ISSN 2278-1633ANTIM JAN

गांधी दर्शन

अंतिम जन

वर्षः 8, अंकः 1, संख्याः 63, जून 2025, मूल्यः ₹20

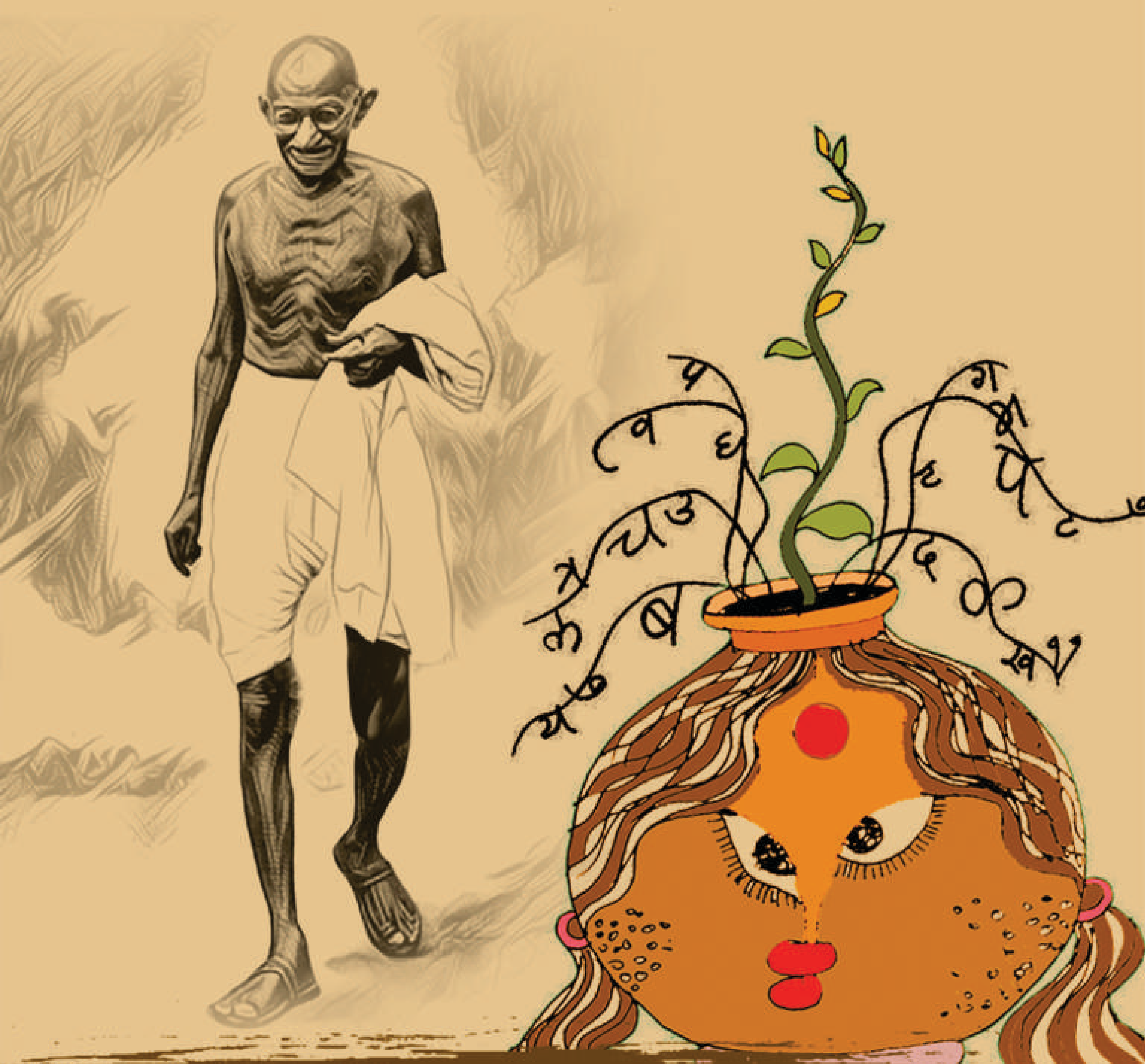

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति संग्रहालय

समिति के दो परिसर हैं- गांधी स्मृति और गांधी दर्शन।

गांधी स्मृति, 5, तीस जनवरी मार्ग, नई दिल्ली पर स्थित है। इस भवन में उनके जीवन के अंतिम 144 दिनों से जुड़े दुर्लभ चित्र, जानकारियाँ और मल्टीमीडिया संग्रहालय (Museum) है। जिसमें प्रवेश निःशुल्क है।

दूसरा परिसर गांधी दर्शन राजघाट पर स्थित है। यहाँ 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश' प्रदर्शनी, डोम थियेटर और राष्ट्रीय स्वच्छता केंद्र संग्रहालय (Museum) है।

दोनों परिसर के संग्रहालय प्रतिदिन प्रातः 10 से शाम 6:30 तक खुलते हैं।
(सोमवार एवं राजपत्रित अवकाश को छोड़ कर)

ISSN 2278A-1633ANTIM JAN

गांधी दर्शन

अंतिम जन

वर्ष-8, अंक: 1, संख्या-63
जून 2025

संरक्षक
विजय गोयल
उपाध्यक्ष, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति

प्रधान सम्पादक
संजीत कुमार

सम्पादक
प्रवीण दत्त शर्मा
पंकज चौबे

परामर्श
वेदाभ्यास कुंडू
सौरव राय

प्रबन्ध सहयोग
शुभांगी गिरधर

मूल्य	:	₹20
वार्षिक सदस्यता	:	₹200
दो साल	:	₹400
तीन साल	:	₹500

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति
गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली-110002
फोन : 011-23392796
ई-मेल : antimjangsds@gmail.com
2010gsds@gmail.com
गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट,
नई दिल्ली-110002, की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित।
लेखकों द्वारा उनकी रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण उनके अपने हैं, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट, नई दिल्ली के नहीं।
समस्त मामले दिल्ली न्यायालय में ही विचाराधीन।
मुद्रक
पोहोजा प्रिंट सोल्यूशंस प्रा. लि., दिल्ली - 110092

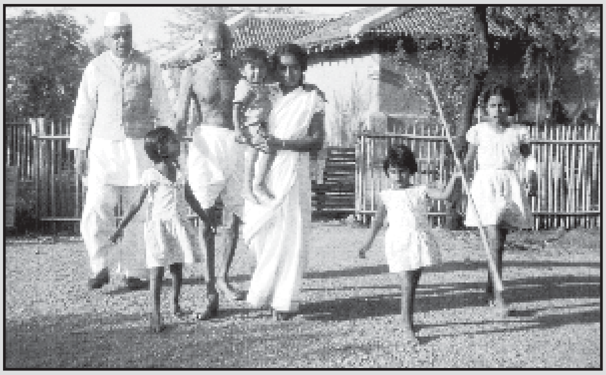

इस अंक में

धरोहर
बचपन से ही डालें स्वच्छता की आदतें –*मोहनदास करमचंद गांधी* 5
भाषण
देश को आगे बढ़ा रहा है आम व्यक्ति का संकल्प –*श्री नरेंद्र मोदी* 8
डायरी
गुप्त नीति का विरोध –*डॉ सुशीला नैयर* 15
निबंध
नाखून क्यों बढ़ते हैं? –*हजारी प्रसाद द्विवेदी* 17
पर्यावरण
पर्यावरण : खाने का और दिखाने का और –*अनुपम मिश्र* 21
धरती मां की यही पुकार मिट्टी पानी और बयार –*सुबोध कुमार वर्मा* 25
विमर्श
सम्पूर्ण क्रांति : सरकारी शक्ति से नहीं, जनशक्ति से –*जय प्रकाश नारायण* 29
सहनशीलता: भारत और महात्मा गांधी – *प्रो. डॉ० रवीन्द्र कुमार* 32
स्मरण
गांधी दर्शन का स्वस्तिवाचन: प्रार्थना सभा –*कृष्ण बिहारी पाठक* 37
संस्मरण
गांधी : एक नेता –*म्यूरियल लेस्टर* 40
सामयिक
विदेश में हिंदी सिखाने और सीखने की व्यावहारिक समस्याएं और संभावित समाधान – *डॉ. शैलेश शुक्ला* 42
योग दिवस पर विशेष
भारतीयता की पहचान: योग और अध्यात्म –*डॉ. दीपक शर्मा* 45
कविता
भवानी प्रसाद मिश्र की कविताएं 49
फोटो में गांधी 52
गांधी क्विज-13 53
बाल कहानी
शेर और लड़का – *प्रेमचंद* 54
किताब
राजेंद्र प्रसाद : देशरत्न से भारतरत्न बनने की दास्तान – *डॉ हरेराम पाठक* 57
गतिविधियाँ 60

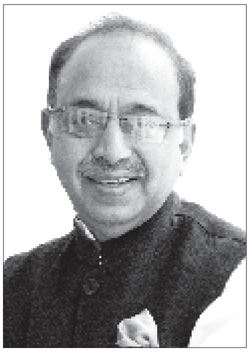

गांधी और स्वस्थ भारत

महात्मा गांधी सेहतमंद भारत बनाना चाहते थे। उन्होंने संयमित जीवन शैली, प्राणायाम, नियमित कसरत करने पर खूब जोर दिया। अपने भाषणों में वे युवकों को तंदुरूस्त रहने को प्रेरित करते थे। गांधीजी मानते थे कि अच्छे स्वास्थ्य के लिए मनुष्य कुदरत के नियमों का पालन करे, शुद्ध और ताजी हवा का सेवन करे, नियमित कसरत करे और अपना हृदय शुद्ध रखे।

गांधीजी के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति वह है, जो सभी तरह की बीमारियों से मुक्त है, जो अपनी नियमित क्रियाएं बिना थकावट के पूरी करता है। वे स्वयं भी हर दिन शाम को लगभग आठ मील पैदल चलते थे और बिस्तर पर जाने से पहले 30-40 मिनट के लिए फिर से टहलने जाते थे। योग के एक घटक प्राणायाम के वे बड़े समर्थक थे। वे कहते थे-हर किसी के लिए जरूरी है प्राणायाम सीखना। प्राणायाम जीवन को सहजता से लेना सिखाता है। इस प्रकार गांधीजी भारतीयों की सेहत को लेकर चिंतित नजर आते हैं, लेकिन उन्हें स्वस्थ रहने के ऐसे उपाय बताते हैं, जिनमें कोई पैसा खर्च न हो। जैसे-पैदल चलना। गांधी खूब पैदल चलते थे। उन्होंने अपने जीवन में अनेक पदयात्राएं की हैं। इन पदयात्राओं के जरिए गांधीजी ने राजनीतिक संदेश तो दिया है, साथ ही उन्होंने दुनिया को सैर करने और पैदल चलकर अपने को फिट रखने की प्रेरणा दी है। गांधी की अधिकांश गतिविधियों में शारीरिक श्रम की प्रधानता होती थी। जैसे प्रतिदिन चरखे पर सूत कातना उनकी दिनचर्या में शामिल था। इससे उनके शरीर को भरपूर ऊर्जा मिलती थी।

प्रधानमंत्री जी ने भी गांधीजी के स्वस्थ भारत के सपने को अपने कार्यों के माध्यम से साकार किया है। गांधीजी ने प्राणायाम आदि भारतीय व्यायामों को देश भर में बढ़ावा दिया। वहीं मोदी जी ने योग को लोकप्रिय बनाया। उसे लोगों के जीवन का अभिन्न अंग बनाया। बेशक भारत में योग को जन-जन तक पहुँचाने में योगगुरू स्वामी रामदेव के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। लेकिन योग को नई ऊंचाइयों पर लेकर गए-प्रधानमंत्री मोदीजी। जिन्होंने योग को भारत की सरहदों से निकालकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी लोकप्रिय बनाया। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र संघ में योग दिवस मनाए जाने को लेकर प्रस्ताव रखा। उनके प्रस्ताव को मानते हुए 11 दिसम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र के 177 सदस्यों द्वारा 21 जून को अन्तरराष्ट्रीय योग दिवस को मनाने के प्रस्ताव को मंजूरी मिली। प्रधानमन्त्री मोदी के इस प्रस्ताव को 90 दिन के अन्दर पूर्ण बहुमत से पारित किया गया, जो संयुक्त राष्ट्र संघ में किसी भी प्रस्ताव को पास करने के लिए सबसे कम समय है। आज 21 जून भारत ही नहीं, समूची दुनिया में स्वास्थ्य जागरूकता की एक बड़ी पहल बन गया है। लोगों ने इसे अपने जीवन में उतारना आरंभ कर दिया है। योग व्यायाम के जरिए लाखों लोगों ने अपना जीवन बदला है।

'अंतिम जन' का जून अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस अंक में सभी स्थायी स्तंभों के अतिरिक्त गांधी विचार, बाल कहानी व कविताएं विशेष रूप से पठनीय हैं। आशा है कि यह अंक आपको पसंद आएगा।

विजय गोयल

महात्मा गांधी के चिंतन में पर्यावरण की चिंता

महात्मा गांधी ने न केवल सामाजिक और राजनीतिक विचारों से हमारा मार्गदर्शन किया, अपितु उनमें गहरी पर्यावरणीय संवेदनशीलता भी निहित थी। यद्यपि उनके समय में ''पर्यावरण संरक्षण''एक विशिष्ट आंदोलन नहीं था, फिर भी गांधी जी के विचार और जीवनशैली आज के पर्यावरण संकटों का समाधान प्रस्तुत करते हैं।

गांधी जी का जीवन अत्यंत सादा, प्रकृति के अनुरूप और आत्मनिर्भरता पर आधारित था। वे सादा जीवन जीने और स्वावलंबन के पक्षधर थे। उनका मानना था कि प्रकृति की देन का उपयोग मनुष्य को आवश्यकता अनुसार करना चाहिए, न कि लोभवश। उन्होंने कहा था – ''पृथ्वी सभी की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन प्रदान करती है, लेकिन किसी के भी लालच को पूरा करने के लिए नहीं।'' इस कथन से स्पष्ट है कि गांधी जी संसाधनों के न्यायसंगत और सतत उपयोग के पक्षधर थे।

गांधी जी की जीवनशैली पूर्णतः पर्यावरण के अनुकूल थी। वे खादी पहनते थे, जो स्थानीय कच्चे माल और श्रम से निर्मित होती थी। यह न केवल आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देती थी, बल्कि औद्योगिक प्रदूषण और उपभोक्तावाद को भी कम करती थी।

वे औद्योगिकीकरण और अंधाधुंध विकास के आलोचक थे। उनका मानना था कि पश्चिमी देशों का औद्योगिक मॉडल भारत जैसे देश के लिए विनाशकारी हो सकता है। उन्होंने इंग्लैंड के मैनचेस्टर और लिवरपूल जैसे औद्योगिक नगरों को 'भस्मासुर' कहा था, जो मनुष्य और प्रकृति दोनों का शोषण करते हैं। गांधी जी का यह दृष्टिकोण आज के 'सतत विकास' (sustainable development) सिद्धांत के अनुरूप है।

आज पूरा विश्व पर्यावरण की बिगड़ती सेहत को लेकर चिंतित है। देश और दुनिया में बड़े बड़े सम्मेलन हो रहे हैं, पर्यावरण संरक्षण को लेकर। लेकिन यदि हम गांधी के विचारों के अनुरूप नीतियाँ बनाएं, तो निश्चय ही पर्यावरण की दशा सुधारी जा सकती है।

अंतिम जन के ताजा अंक में हमने प्रयास किया है कि गांधी विचारों के अलावा सभी मुद्दों पर सामग्री संकलित करें।

इस अंक में गांधी जी की सहयोगी डॉ. सुशीला नैयर का संस्मरण 'गुप्त नीति का विरोध' विशेष पठनीय है। इसके अलावा 'पर्यावरण खाने का और दिखाने का ओर' हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' व भवानी प्रसाद मिश्र की कविताएं भी संग्रहणीय हैं। हम हर अंक में नवीनता लाने का प्रयास करते हैं, यह प्रयास आपको कैसा लगा, आपके विचारों और सुझावों से हमें अवगत करवाएं।

संजीत कुमार

आपके ख़त

आधुनिकता और परंपरा का संतुलन

आपकी पत्रिका में प्रकाशित अतुल कुमार का लेख ''गांधी, काका कालेलकर और हिंदी'' अत्यंत रोचक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण वाला है। भाषा, विचार और समाज के संबंधों पर यह लेख महत्वपूर्ण संदेश देता है।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का व्याख्यान ''नई ऊँचाइयों की ओर बढ़ता भारत...'' इस अंक को समसामयिक आयाम देता है। वहीं, हरिवंश जी की बातचीत ''मानवता बची रहेगी, अगर पुस्तकें बची रहें'' आज के डिजिटल युग में पुस्तकों के महत्व को पुनः स्थापित करती है।

इस अंक में आधुनिकता, परंपरा और भविष्य के बीच अद्‌भुत संतुलन दिखता है।

पर्यावरण जागरूकता

पत्रिका के इस अंक में पर्यावरण और आदिवासी विमर्श पर आधारित लेख अत्यंत विचारोत्तेजक रहे। नृपेंद्र अभिषेक नृप का आलेख ''प्रकृति ही परमात्मा है...'' एक गहन दार्शनिक दृष्टिकोण देता है, जबकि रंजना मिश्रा का लेख ''हमारी शक्ति, हमारा ग्रह'' आज की पर्यावरणीय चुनौतियों को सरल भाषा में प्रस्तुत करता है।

वहीं, प्रियंका सौरभ द्वारा लिखा गया ''गोंडी विद्यालय बंद...'' आलेख आदिवासी संस्कृति के संरक्षण की आवश्यकता को रेखांकित करता है। यह न केवल सूचना देता है, बल्कि चेतना को भी जाग्रत करता है।

आपकी संपादकीय दृष्टि को साधुवाद।

लक्की शर्मा,
अशोक नगर, दिल्ली

सुंदर बाल साहित्य

आपकी पत्रिका के इस अंक में बाल साहित्य का समावेश एक सराहनीय पहल है। मुकेश बहुगुणा की 'जोगाड़ी बनी ज्योति', राम करण की 'गोल्डन रिंग' और ऐनी बेसेंट की 'माला की चांदी की पायल' जैसी रचनाएं बालकों के साथ-साथ बड़ों को भी आनंद देती हैं।

इन रचनाओं में संस्कृति, कल्पना और मानवीय मूल्यों का सुंदर समन्वय है। साथ ही, 'फोटो में गांधी' अनुभाग गांधीजी के सरल जीवन के झरोखे खोलता है, जिससे बालक सरलता और सच्चाई का मूल्य सीख सकते हैं।

आपसे अनुरोध है कि भविष्य में भी बच्चों के लिए ऐसा सुंदर साहित्य प्रकाशित करते रहें।

मुकेश कुमार,
नेहरू विहार, दिल्ली

आप भी पत्र लिखें। सर्वश्रेष्ठ पत्र को पुरस्कृत कर, उपहार दिया जाएगा।

बचपन से ही डालें स्वच्छता की आदतें

मोहनदास करमचंद गांधी

रेल के तीसरे दर्जे में सफर करने वाले एक महाशय लिखते हैं कि मुसाफिरों की बुरी आदतों के कारण रेल के तीसरे दर्जे की मुसाफिरी असह्य हो गई है। इस दु:ख से बचने के लिए एक छोटी-सी झाड़ू और एक ढकनदार थूकदानी साथ रखनी चाहिए। बुहारी से डिब्बे को साफ करते रहें और यदि कोई अन्दर थूकने लगे तो उसके मुँह से थूकदानी लगा दें। ऐसा करने से यह दु:ख दूर हो सकता है।

इसमें कोई शक नहीं कि जिन्हें सफाई पसन्द है उन्हें तो ऐसी गन्दगी असह्य होती है। फिर भी तीसरे दर्जे में सफर किये बिना हमारा छुटकारा नहीं। जब मैं तीसरे दर्जे में ही सफर करता था तब मैंने पत्रिकाएँ प्रकाशित की थीं और उन्हें यात्रियों में बँटवाता भी था। फिर मेरे काम में परिवर्तन हो गया; और मेरा पत्रिकाएँ बाँटना बन्द हो गया। इसके बाद मेरा स्वास्थ्य गिर गया, अत: मेरा तीसरे दर्जे में सफर करने का सुख समाप्त हो गया और उसके साथ-साथ उसका दु:ख भी। परन्तु उसकी मीठी याद मुझे अभी बनी हुई है और मैं उसे फिर ताजी करने की उम्मीद रखता हूँ।

यह आवश्यक है कि हरएक स्वयंसेवक पत्रिकाएँ बाँटे और पढ़कर सुनाये। उसके साथ ही झाड़ू का प्रयोग भी करना चाहिए। थूकदानी को मुँह से लगा देने का काम कठिन है। इसमें मार खानी पड़ सकती है और फिर भी सम्भव है कि मुसाफिर उसमें थूकने से इनकार कर दे। झाड़ू का प्रयोग आवश्यक है। स्वयंसेवक मुसाफिरों को डिब्बे में कूड़ा-कचरा न डालने के लिए भी समझायें। यदि वहाँ फिर भी कूड़ा-कचरा हो जाये तो वे उसे झाड़ू से प्रेमपूर्वक साफ कर दें। थूकदानी के इस्तेमाल से एक तरह की गन्दगी की जगह दूसरी

कितने ही सिद्धान्तों का, जिनमें से कुछ तो परस्पर विरोधी भी होते हैं, एक साथ प्रयोग करना पड़ता है। अत: कहा जा सकता है कि सभी सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर किया हुआ काम अधिक से- अधिक फलदायी साबित होता है।

अन्त्यजों के तो हमने पंख ही काट डाले हैं। हमने उनकी भावनाओं को कुचल दिया है। अत: उनके बीच बहुत सा काम तो हमे प्रायश्चित्त रूपमें ही करना पड़ेगा।

तरह की गन्दगी फैलने का अन्देशा है। थूकदानी हर दफा थूकने के बाद ठीक तरह से साफ की जानी चाहिए। थूकदानी भी ऐसी हो जिसके भीतर जोड़ न हो, जो जंग न खाये और आकार में बड़ी हो। मैं तो बहुत-सा कागज साथ रखता था। जहाँ किसी ने थूका हो वहाँ कागज से साफ करने से एक तो हाथ खराब नहीं होता और दूसरे उस जगह की सफाई भी अच्छी तरह हो जाती है ।

फिर यदि हाथ धोना चाहें तो धो भी सकते हैं। ऐसा करने से दूसरे थूकनेवाले शर्मिन्दा होते हैं और कम थूकते हैं। खेद की बात तो यह है कि स्वयंसेवक स्वयं सलीका नहीं बरतते और सदा सफाई के नियमों का पालन नहीं करते। हम लोगों में दूसरों की सुविधा का खयाल बहुत ही कम दिखाई देता है। इसीलिए रेल में, जहाज में, हम जहाँ भी जायें वहाँ, हमें बेहद गन्दगी दिखाई देती है । यह बात तो तभी सुधर सकती है जब हमें बचपन से ही सफाई-सुथराई के नियमों की शिक्षा दी जाये और हम यह समझें कि उनका पालन किया ही जाना चाहिए। पाठकों को शायद यह मालूम न होगा कि रेलके डिब्बों में इस तरह गन्दगी करना रेल के कानून के अनुसार अपराध है। परन्तु इसके लिए किसी पर मुकदमा नहीं चलाया जाता, क्योंकि जुर्म करने वालों की संख्या बहुत है और न करने वालों की बहुत कम। इसी से यह कहा जाता है कि जिस कानून को बहुसंख्यक लोग मानें उसी को थोड़े लोगों के विरोध के करने पर भी मनवाया जा सकता है। इसका अर्थ यही है कि कानून के लिए अनुकूल वातावरण की आवश्यकता है। विशेष अर्थ यह हुआ कि बहुतेरे कानून निरर्थक होते हैं। वातावरण तैयार हो जाने के बाद अल्पसंख्यक खुद-ब-खुद रिवाज को देखकर उसके अनुसार चलने लगते हैं ।

''लोकप्रिय'' का अर्थ

एक शिक्षक पत्र में लिखते हैं:

''लोकप्रिय'' का अर्थ तो जो लेखक ने किया है वही मैंने अपने लेख में माना है । मैंने सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए अपना विचार प्रकट किया है और उसके अनुसार जो गाँव पाठशाला की सहायता न करे हम वहाँ पाठशाला न रखें और यदि रखें तो उसे "लोकप्रिय'' न कहें। नवीन हलचल के उत्साह के कारण हमें ऐसा तो लग सकता है कि जगह-जगह पाठशालाएँ कायम करना उचित है; और समाज रुपया दे तो हम उन्हें क्यों न चलाएँ। फिर भी मैं

ऐसी प्रवृत्ति को निर्दोष नहीं मानता। इसीलिए कितनी ही ईसाई पाठशालाएँ उनके उद्देश्य को देखते हुए निरर्थक मालूम होती हैं। हम देखते हैं कि एक जगह एकत्र किये गये धन का उपयोग किसी दूरस्थ स्थान पर किया जाता है और इसी कारण उसका दुरुपयोग भी होता है। फिर इस प्रकार हम जनता के जिस वर्ग की ऐसी सेवा करते हैं वह अपंग हो जाता है; अतः हम जिस हद तक पूर्वोक्त सिद्धान्त के अनुसार चलेंगे, मैं मानता हूँ कि हम उसी हद तक ठीक रास्ते पर जायेंगे।

इस न्याय के अनुसार स्वयं जिस गाँव के लोग अपने बाल-बच्चे न भेजें और रुपया भी न दें, उस गाँव में पाठशाला खोलने में खर्च करना फिजूल हो सकता है।

लेकिन इस पर कोई यह कह उठेगा कि इस न्याय के अनुसार तो अन्त्यजों के लिए-एक भी पाठशाला नहीं खोली जा सकेगी, क्योंकि अभी तो अन्त्यजों में हमारा काम ''लोकप्रिय'' नहीं है। फिर कितने ही गाँवों में तो सारा हिन्दू समाज इसका विरोधी है; यदि विरोधी नहीं तो उदासीन अवश्य है। इससे यही जाहिर होता है कि सिद्धान्त एकांगी नहीं होते । कितने ही सिद्धान्तों का, जिनमें से कुछ तो परस्पर विरोधी भी होते हैं, एक साथ प्रयोग करना पड़ता है। अतः कहा जा सकता है कि सभी सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर किया हुआ काम अधिक से-अधिक फलदायी साबित होता है ।

अन्त्यजों के तो हमने पंख ही काट डाले हैं। हमने उनकी भावनाओं को कुचल दिया है। अतः उनके बीच बहुत सा काम तो हमे प्रायश्चित्त रूप में ही करना पड़ेगा। उनके लिए मदरसे, कुएँ और मन्दिर हमें ही बनाने हैं। यह हमारे ऊपर उनका कर्ज है । फिर यह काम लोकप्रिय नहीं हो सकता । जिन्हें यह प्रिय हो वे उसके लिए रुपया दें और फलकी आशा न रखकर काम करें। हमें यहाँ "लोकप्रिय'' का अर्थ दूसरी तरह ही करना चाहिए और ऐसी उलझन के समय ही धर्म-संकट उपस्थित होता है। ऐसे अवसरों पर ही भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों का समन्वय करके कार्य करने में हमारी विवेक दृष्टि की परीक्षा होती है ।

देश को आगे बढ़ा रहा है आम व्यक्ति का संकल्प

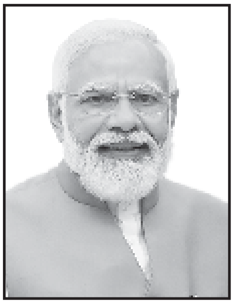

श्री नरेंद्र मोदी

मेरे प्यारे देशवासियों, नमस्कार। आज पूरा देश आतंकवाद के खिलाफ एकजुट है, आक्रोश से भरा हुआ है, संकल्पबद्ध है। आज हर भारतीय का यही संकल्प है, हमें आतंकवाद को खत्म करना ही है। साथियो, 'ऑपरेशन सिंदूर' के दौरान हमारी सेनाओं ने जो पराक्रम दिखाया है, उसने हर हिंदुस्तानी का सिर ऊँचा कर दिया है। जिस Precision के साथ, जिस सटीकता के साथ, हमारी सेनाओं ने सीमा पार के आतंकवादी ठिकानों को ध्वस्त किया, वो अद्भुत है। 'ऑपरेशन सिंदूर' ने दुनिया-भर में आतंक के खिलाफ लड़ाई को नया विश्वास और उत्साह दिया है।

साथियो, 'ऑपरेशन सिंदूर' सिर्फ एक सैन्य मिशन नहीं है, ये हमारे संकल्प, साहस और बदलते भारत की तस्वीर है और इस तस्वीर ने पूरे देश को देश-भक्ति के भावों से भर दिया है, तिरंगे में रंग दिया है। आपने देखा होगा, देश के कई शहरों में, गावों में, छोटे-छोटे कस्बों में, तिरंगा यात्राएं निकाली गई। हजारों लोग हाथों में तिरंगा लेकर देश की सेना, उसके प्रति वंदन-अभिनंदन करने निकल पड़े। कितने ही शहरों में Civil Defense Volunteer बनने के लिए बड़ी संख्या में युवा एकजुट हो गए, और हमने देखा, चंडीगढ़ के Videos तो काफी viral हुए थे। Social media पर कविताएँ लिखी जा रही थीं, संकल्प गीत गाये जा रहे थे। छोटे-छोटे बच्चे Paintings बना रहे थे जिनमें बड़े सन्देश छुपे थे। मैं अभी तीन दिन पहले बीकानेर गया था। वहाँ बच्चों ने मुझे ऐसी ही एक Painting भेंट की थी। 'ऑपरेशन सिंदूर' ने देश के लोगों को इतना प्रभावित किया है कि कई परिवारों ने इसे अपने जीवन का हिस्सा बना लिया है। बिहार के कटिहार में, यूपी के कुशीनगर में, और भी कई शहरों में, उस दौरान जन्म लेने वाले बच्चों का नाम 'सिंदूर' रखा गया है।

साथियो, हमारे जवानों ने आतंक के अड्डों को तबाह किया, यह उनका अदम्य साहस था और उसमें शामिल थी, भारत में बने हथियारों, उपकरणों और Technology की ताकत। उसमें 'आत्मनिर्भर भारत' का

> मैं आपको एक ऐसे गांव के बारे में बताना चाहता हूं, जहां पहली बार एक बस पहुंची। इस दिन का वहां के लोग वर्षों से इंतजार कर रहे थे। और जब गांव में पहली बार बस पहुंची तो लोगों ने ढ़ोल-नगाड़े बजाकर उसका स्वागत किया। बस को देखकर लोगों की खुशी का ठिकाना नहीं था। गांव में पक्की सड़क थी, लोगों को जरूरत थी, लेकिन पहले कभी यहां बस नहीं चल पाई थी। क्यों, क्योंकि ये गांव माओवादी हिंसा से प्रभावित था।

संकल्प भी था। हमारे Engineers, हमारे Technician हर किसी का पसीना इस विजय में शामिल है। इस अभियान के बाद पूरे देश में 'Vocal for Local' को लेकर एक नई ऊर्जा दिख रही है। कई बातें मन को छू जाती हैं। एक माँ-बाप ने कहा - "अब हम अपने बच्चों के लिए सिर्फ भारत में बने खिलौने ही लेंगे। देश-भक्ति की शुरुआत बचपन से होगी।" कुछ परिवारों ने शपथ ली है - "हम अपनी अगली छुट्टियाँ देश के किसी खूबसूरत जगह में ही बिताएंगे।" कई युवाओं ने 'Wed in India' का संकल्प लिया है, वो देश में ही शादी करेंगे। किसी ने ये भी कहा है - "अब जो भी Gift देंगे, वह किसी भारतीय शिल्पकार के हाथों से बना होगा।"

साथियो, यही तो है, भारत की असली ताकत 'जन-मन का जुड़ाव, जन-भागीदारी'। मैं आप सबसे भी आग्रह करता हूँ, आइए, इस अवसर पर एक संकल्प लें - हम अपने जीवन में जहाँ भी संभव हो, देश में बनी चीजों को प्राथमिकता देंगे। यह सिर्फ आर्थिक आत्मनिर्भरता की बात नहीं है, यह राष्ट्र के निर्माण में भागीदारी का भाव है। हमारा एक कदम, भारत की प्रगति में बहुत बड़ा योगदान बन सकता है।

साथियों, बस से कहीं आना-जाना कितनी सामान्य बात है। लेकिन मैं आपको एक ऐसे गांव के बारे में बताना चाहता हूं, जहां पहली बार एक बस पहुंची। इस दिन का वहां के लोग वर्षों से इंतजार कर रहे थे। और जब गांव में पहली बार बस पहुंची तो लोगों ने ढ़ोल-नगाड़े बजाकर उसका स्वागत किया। बस को देखकर लोगों की खुशी का ठिकाना नहीं था। गांव में पक्की सड़क थी, लोगों को जरूरत थी, लेकिन पहले कभी यहां बस नहीं चल पाई थी। क्यों, क्योंकि ये गांव माओवादी हिंसा से प्रभावित था। यह जगह है महाराष्ट्र के गढ़चिरौली जिले में, और इस गांव का नाम है, काटेझरी। काटेझरी में आए इस परिवर्तन को आसपास के पूरे क्षेत्र में महसूस किया जा रहा है। अब यहां हालात तेजी से सामान्य हो रहे हैं। माओवाद के खिलाफ सामूहिक लड़ाई से अब ऐसे क्षेत्रों तक भी बुनियादी सुविधाएं पहुंचने लगी है। गांव के लोगों का कहना है कि बस के आने से उन लोगों का जीवन बहुत आसान हो जाएगा।

साथियो, 'मन की बात' में हम छत्तीसगढ़ में हुए बस्तर Olympics और माओवाद प्रभावित क्षेत्रों में Science Lab पर चर्चा कर चुके हैं।

यहां के बच्चों में Science का Passion है। वो Sports में भी कमाल कर रहे हैं। ऐसे प्रयासों से पता चलता है कि इन इलाकों में रहने वाले लोग कितने साहसी होते हैं। इन लोगों ने तमाम चुनौतियों के बीच अपने जीवन को बेहतर बनाने की राह चुनी है। मुझे यह जानकर भी बहुत खुशी हुई कि 10वीं और 12वीं की परीक्षाओं में दंतेवाड़ा जिले के नतीजे बहुत शानदार रहे हैं। करीब Ninety Five Percent Result के साथ ये जिला 10वीं के नतीजों में Top पर रहा। वहीं 12वीं की परीक्षा में इस जिले ने छत्तीसगढ़ में छठा स्थान हासिल किया। सोचिए! जिस दंतेवाड़ा में कभी माओवाद चरम पर था, वहां आज शिक्षा का परचम लहरा रहा है। ऐसे बदलाव हम सभी को गर्व से भर देते हैं।

मेरे प्यारे देशवासियो, अब मैं Lions, शेरों से जुड़ी एक बड़ी अच्छी खबर आपको बताना चाहता हूं। पिछले केवल पाँच वर्षों में गुजरात के गिर में शेरों की आबादी 674 से बढ़कर 891 हो गई है। Six Hundred Seventy Four से Eight Hundred Ninety One! Lion census के बाद सामने आई शेरों की ये संख्या बहुत उत्साहित करने वाली है। साथियो, आप में से बहुत से लोग यह जानना चाह रहे होंगे कि आखिर ये Animal census होती कैसे है? ये exercise बहुत ही चुनौतीपूर्ण है। आपको यह जानकर हैरानी होगी कि Lion Census 11 जिलों में, 35 हजार वर्ग किलोमीटर के दायरे में की गई थी। Census के लिए टीमों ने Round the Clock यानी चौबीसों घंटे इन क्षेत्रों की निगरानी की। इस पूरे अभियान में verification और cross verification दोनों किए गए। इससे पूरी बारीकी से शेरों की गिनती का काम पूरा हो सका।

साथियो, Asiatic Lion की आबादी में बढ़ोतरी ये दिखाती है कि जब समाज में ownership का भाव मजबूत

होता है, तो कैसे शानदार नतीजे आते हैं। कुछ दशक पहले गिर में हालात बहुत challenging थे। लेकिन वहां के लोगों ने मिलकर बदलाव लाने का बीड़ा उठाया। वहां latest technology के साथ ही global best practices को भी अपनाया गया। इसी दौरान गुजरात ऐसा पहला राज्य बना, जहां बड़े पैमाने पर Forest Officers के पद पर महिलाओं की तैनाती की गई। आज हम जो नतीजे देख रहे हैं, उसमें इन सभी का योगदान है। Wild Life Protection के लिए हमें ऐसे ही हमेशा जागरुक और सतर्क रहना होगा।

आज मैं आपको एक ऐसे शानदार व्यक्ति के बारे में बताना चाहता हूँ जो एक कलाकार भी हैं और जीती-जागती प्रेरणा भी हैं। नाम है - जीवन जोशी, उम्र 65 साल। अब सोचिए, जिनके नाम में ही जीवन हो, वो कितनी जीवंतता से भरे होंगे। जीवन जी उत्तराखंड के हल्द्वानी में रहते हैं। बचपन में पोलियो ने उनके पैरों की ताकत छीन ली थी, लेकिन पोलियो, उनके हौसलों को नहीं छीन पाया। उनके चलने की रफ्तार भले कुछ धीमी हो गई, लेकिन उनका मन कल्पना की हर उड़ान उड़ता रहा। इसी उड़ान में, जीवन जी ने एक अनोखी कला को जन्म दिया - नाम रखा 'बगेट'।

मेरे प्यारे देशवासियो, दो-तीन दिन पहले ही, मैं, पहली Rising North East Summit में गया था। उससे पहले हमने North East के सामर्थ्य को समर्पित 'अष्टलक्ष्मी महोत्सव' भी मनाया था। North East की बात ही कुछ और है, वहां का सामर्थ्य, वहां का talent, वाकई अद्‌भुत है। मुझे एक दिलचस्प कहानी पता चली है crafted fibers की। Crafted fibers ये सिर्फ एक brand नहीं, सिक्किम की परंपरा, बुनाई की कला, और आज के fashion की सोच - तीनों का सुन्दर संगम है। इसकी शुरुआत की डॉ० चेवांग नोरबू भूटिया ने। पेशे से वो Veterinary Doctor हैं और दिल से सिक्किम की संस्कृति के सच्चे Brand Ambassador. उन्होंने सोचा क्यूं न बुनाई को एक नया आयाम दिया जाए! और इसी सोच से जन्म हुआ Crafted fibers का। उन्होंने पारंपरिक बुनाई को modern fashion से जोड़ा और इसे बनाया एक Social Enterprise. अब उनके यहां केवल कपड़े नहीं बनते, उनके यहां जिंदगियाँ बुनी जाती हैं। वे local लोगों को skill training देते हैं, उन्हें आत्मनिर्भर बनाते हैं। गांवों के बुनकर, पशुपालक और self-help groups इन सबको जोड़कर डॉ० भूटिया ने रोजगार के नए रास्ते बनाए हैं। आज, स्थानीय महिलाएं और कारीगर अपने हुनर से अच्छी कमाई कर रहे हैं। crafted fibers के शॉल, स्टोल, दस्ताने, मोजे, सब, local handloom से बने होते हैं। इसमें जो ऊन का इस्तेमाल होता है, वो सिक्किम के खरगोशों और भेड़ों से आता है। रंग भी पूरी तरह प्राकृतिक होते हैं - कोई chemical नहीं, सिर्फ प्रकृति की रंगत। डॉ० भूटिया ने सिक्किम की पारंपरिक बुनाई और संस्कृति को एक नई पहचान दी है। डॉ० भूटिया का काम हमें सिखाता है कि जब परंपरा को passion से जोड़ा जाए, तो वो दुनिया को कितना लुभा सकती है।

मेरे प्यारे देशवासियो, आज मैं आपको एक ऐसे शानदार व्यक्ति के बारे में बताना चाहता हूँ जो एक कलाकार भी हैं और जीती-जागती प्रेरणा भी हैं। नाम है - जीवन जोशी, उम्र 65 साल। अब सोचिए, जिनके नाम में ही जीवन हो, वो कितनी जीवंतता से भरे होंगे। जीवन जी उत्तराखंड के हल्द्वानी में रहते हैं। बचपन में पोलियो ने उनके पैरों की ताकत छीन ली थी, लेकिन पोलियो, उनके हौसलों को नहीं छीन पाया। उनके चलने की रफ्तार भले कुछ धीमी हो गई, लेकिन उनका मन कल्पना की हर उड़ान उड़ता रहा। इसी उड़ान में, जीवन जी ने एक अनोखी कला को जन्म दिया - नाम रखा 'बगेट'। इसमें वो चीड़ के पेड़ों से गिरने वाली सूखी छाल से सुंदर कलाकृतियाँ बनाते हैं। वो छाल, जिसे लोग आमतौर पर बेकार समझते हैं - जीवन जी के हाथों में आते ही धरोहर बन जाती है। उनकी हर रचना में उत्तराखंड की मिट्टी की खुशबू होती है। कभी पहाड़ों के लोक वाद्ययंत्र, तो कभी लगता है जैसे पहाड़ों की आत्मा उस लकड़ी में समा गई हो। जीवन जी का काम सिर्फ कला नहीं, एक साधना है। उन्होंने इस कला में

अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया है। जीवन जोशी जैसे कलाकार हमें याद दिलाते हैं कि परिस्थितियाँ चाहे जैसी भी हों, अगर इरादा मजबूत हो, तो, नामुमकिन कुछ नहीं। उनका नाम जीवन है और उन्होंने सच में दिखा दिया कि जीवन जीना क्या होता है।

मेरे प्यारे देशवासियों, आज कई ऐसी महिलाएं हैं, जो खेतों के साथ ही, अब, आसमान की ऊंचाइयों पर काम कर रही हैं। जी हाँ! आपने सही सुना, अब गाँव की महिलाएं drone दीदी बनकर drone उड़ा रही हैं और उससे खेती में नई क्रांति ला रही हैं।

साथियों, तेलंगाना के संगारेड्डी जिले में, कुछ समय पहले तक जिन महिलाओं को दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता था, आज वे ही महिलाएं drone से 50 एकड़ जमीन पर दवा के छिड़काव का काम पूरा कर रही हैं। सुबह तीन घंटे, शाम दो घंटे और काम निपट गया। धूप की तपन नहीं, जहर जैसे chemicals का खतरा नहीं। साथियो, गाँववालों ने भी इस परिवर्तन को दिल से स्वीकार किया है। अब ये महिलाएं 'drone operator' नहीं, 'sky warriors' के नाम से जानी जाती हैं। ये महिलाएं हमें बता रही हैं – बदलाव तब आता है जब तकनीक और संकल्प एक साथ चलते हैं।

मेरे प्यारे देशवासियो, 'अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस' में अब एक महीने से भी कम समय बचा है। ये अवसर याद दिलाता है कि अगर आप अब भी योग से दूर हैं तो अब योग से जुड़ें। योग आपका जीवन जीने का तरीका बदल देगा। साथियो, 21 जून 2014 में 'योग दिवस' की शुरुआत के बाद से ही इसका आकर्षण लगातार बढ़ रहा है। इस बार भी 'योग दिवस' को लेकर दुनिया-भर में लोगों का जोश और उत्साह नजर आ रहा है। अलग-अलग संस्थान अपनी तैयारियां साझा कर रहे हैं। बीते वर्षों की तस्वीरों ने बहुत प्रेरित किया है। हमने देखा है अलग-अलग देशों में किसी साल लोगों ने Yoga Chain बनाई, Yoga Ring बनाई। ऐसी बहुत सी तस्वीरें हैं जहां एक साथ चार generation मिलकर योग कर रही हैं। बहुत से लोगों ने अपने शहर के iconic places को योग के लिए चुना। आप भी इस बार कुछ interesting तरीके से योग दिवस मनाने के बारे में सोच सकते हैं।

साथियों, आंध्र प्रदेश की सरकार ने YogAndhra अभियान शुरू किया है। इसका उद्देश्य पूरे राज्य में योग संस्कृति को विकसित करना है। इस अभियान के तहत योग करने वाले 10 लाख लोगों का एक pool बनाया जा रहा है। मुझे इस वर्ष विशाखापत्तनम में 'योग दिवस' कार्यक्रम में शामिल होने का अवसर मिलेगा। मुझे ये जानकर अच्छा लगा कि इस बार भी हमारे युवा साथी, देश की विरासत से जुड़ी iconic places पर योग करने वाले हैं। कई युवाओं ने नए रिकार्ड बनाने और Yoga Chain का हिस्सा बनने का संकल्प लिया है। हमारे Corporates भी इसमें पीछे नहीं हैं। कुछ संस्थानों ने office में ही योग अभ्यास के लिए अलग स्थान तय कर दिया है। कुछ start-ups ने अपने यहाँ 'office योग hours' तय कर दिए हैं। ऐसे भी लोग हैं जो गांवों में जाकर योग सिखाने की तैयारी कर रहे हैं। Health और Fitness को लेकर लोगों की ये जागरूकता मुझे बहुत आनंद देती है।

योग आपका जीवन जीने का तरीका बदल देगा। साथियो, 21 जून 2014 में 'योग दिवस' की शुरुआत के बाद से ही इसका आकर्षण लगातार बढ़ रहा है। इस बार भी 'योग दिवस' को लेकर दुनिया-भर में लोगों का जोश और उत्साह नजर आ रहा है। अलग-अलग संस्थान अपनी तैयारियां साझा कर रहे हैं। बीते वर्षों की तस्वीरों ने बहुत प्रेरित किया है। हमने देखा है अलग-अलग देशों में किसी साल लोगों ने Yoga Chain बनाई, Yoga Ring बनाई। ऐसी बहुत सी तस्वीरें हैं जहां एक साथ चार generation मिलकर योग कर रही हैं।

साथियो, 'योग दिवस' के साथ-साथ आयुर्वेद के क्षेत्र में भी कुछ ऐसा हुआ है, जिसके बारे में जानकर आपको बहुत खुशी होगी। कल ही यानि 24 मई को WHO

के Director General और मेरे मित्र, तुलसी भाई की मौजूदगी में एक MoU sign किया गया है। इस agreement के साथ ही International Classification of Health Interventions के तहत एक dedicated traditional medicine module पर काम शुरू हो गया है। इस पहल से, आयुष को पूरी दुनिया में वैज्ञानिक तरीके से अधिक- से-अधिक लोगों तक पहुंचाने में मदद मिलेगी।

आपने स्कूलों में blackboard तो देखा होगा, लेकिन अब कुछ स्कूलों में 'sugar board' भी लगाया जा रहा है - blackboard नहीं sugar board! CBSE की इस अनोखी पहल का उद्देश्य है - बच्चों को उनके sugar intake के प्रति जागरूक करना। कितनी चीनी लेनी चाहिए, और कितनी चीनी खाई जा रही है - ये जानकर बच्चे खुद से ही healthy विकल्प चुनने लगे हैं। यह एक अनोखा प्रयास है और इसका असर भी बड़ा positive होगा। बचपन से ही स्वस्थ जीवनशैली की आदतें डालने में यह काफी मददगार साबित हो सकता है। कई अभिभावकों ने इसे सराहा है और मेरा मानना है - ऐसी पहल दफ्तरों, कैन्टीनों और संस्थानों में भी होनी चाहिए आखिरकार, सेहत है तो सब कुछ है। Fit India ही strong India की नींव है।

स्वच्छ भारत की बात हो और 'मन की बात' के श्रोता पीछे रहें ऐसा कैसे हो सकता है भला। मुझे पूरा विश्वास है कि आप सब अपने-अपने स्तर पर इस अभियान को मजबूती दे रहे हैं। लेकिन आज मैं आपको एक ऐसी मिसाल के बारे में बताना चाहता हूँ जहां स्वच्छता के संकल्प ने पहाड़ जैसी चुनौतियों को भी मात दे दी। आप सोचिए, कोई व्यक्ति बर्फीली पहाड़ियों पर चढ़ाई कर रहा हो, जहाँ सांस लेना मुश्किल हो, कदम-कदम पर जान को खतरा हो और फिर भी वो व्यक्ति वहाँ सफाई में जुटा हो। ऐसा ही कुछ किया है, हमारी प्ज्ठच की टीमों के सदस्यों ने।

मेरे प्यारे देशवासियो, स्वच्छ भारत की बात हो और 'मन की बात' के श्रोता पीछे रहें ऐसा कैसे हो सकता है भला। मुझे पूरा विश्वास है कि आप सब अपने-अपने स्तर पर इस अभियान को मजबूती दे रहे हैं। लेकिन आज मैं आपको एक ऐसी मिसाल के बारे में बताना चाहता हूँ जहां स्वच्छता के संकल्प ने पहाड़ जैसी चुनौतियों को भी मात दे दी। आप सोचिए, कोई व्यक्ति बर्फीली पहाड़ियों पर चढ़ाई कर रहा हो, जहाँ सांस लेना मुश्किल हो, कदम-कदम पर जान को खतरा हो और फिर भी वो व्यक्ति वहाँ सफाई में जुटा हो। ऐसा ही कुछ किया है, हमारी ITBP की टीमों के सदस्यों ने। ये टीम, माउंट मकालू जैसे, विश्व की सबसे कठिन चोटी पर चढ़ाई के लिए गई थी। पर साथियो, उन्होंने सिर्फ पर्वतारोहण नहीं किया, उन्होंने अपने लक्ष्य में एक मिशन और जोड़ा 'स्वच्छता' का। चोटी के पास जो कचरा पड़ा था, उन्होंने उसे हटाने का बीड़ा उठाया। आप कल्पना कीजिए, 150 किलो से ज्यादा non-biodegradable waste इस टीम के सदस्य अपने साथ नीचे लाए। इतनी ऊंचाई पर सफाई करना कोई आसान काम नहीं है। लेकिन यह दिखाता है कि जहाँ संकल्प होता है, वहाँ रास्ते अपने आप बन जाते हैं।

साथियो, इसी से जुड़ा एक और जरूरी विषय है -Paper waste और recycling। हमारे घरों और दफ्तरों में हर दिन बहुत सारा paper waste निकलता है। शायद, हम इसे सामान्य मानते हैं, लेकिन आपको जानकर हैरानी होगी, देश के landfill waste का लगभग एक चौथाई हिस्सा कागज से जुड़ा होता है। आज जरूरत है, हर व्यक्ति इस दिशा में जरूर सोचे। मुझे ये जानकर अच्छा लगा कि भारत के कई Start-Ups इस sector में शानदार काम कर रहे हैं। विशाखापत्तनम, गुरुग्राम ऐसे कई शहरों में कई Start-Up paper recycling के innovative तरीके अपना रहे हैं। कोई recycle paper से packaging board बना रहा है, कोई digital तरीकों से newspaper recycling को आसान बना रहा है। जालना जैसे शहरों में कुछ Start-Up 100 percent recycled material से packaging roll और paper core बना रहे हैं। आप ये भी जानकर प्रेरित होंगे,

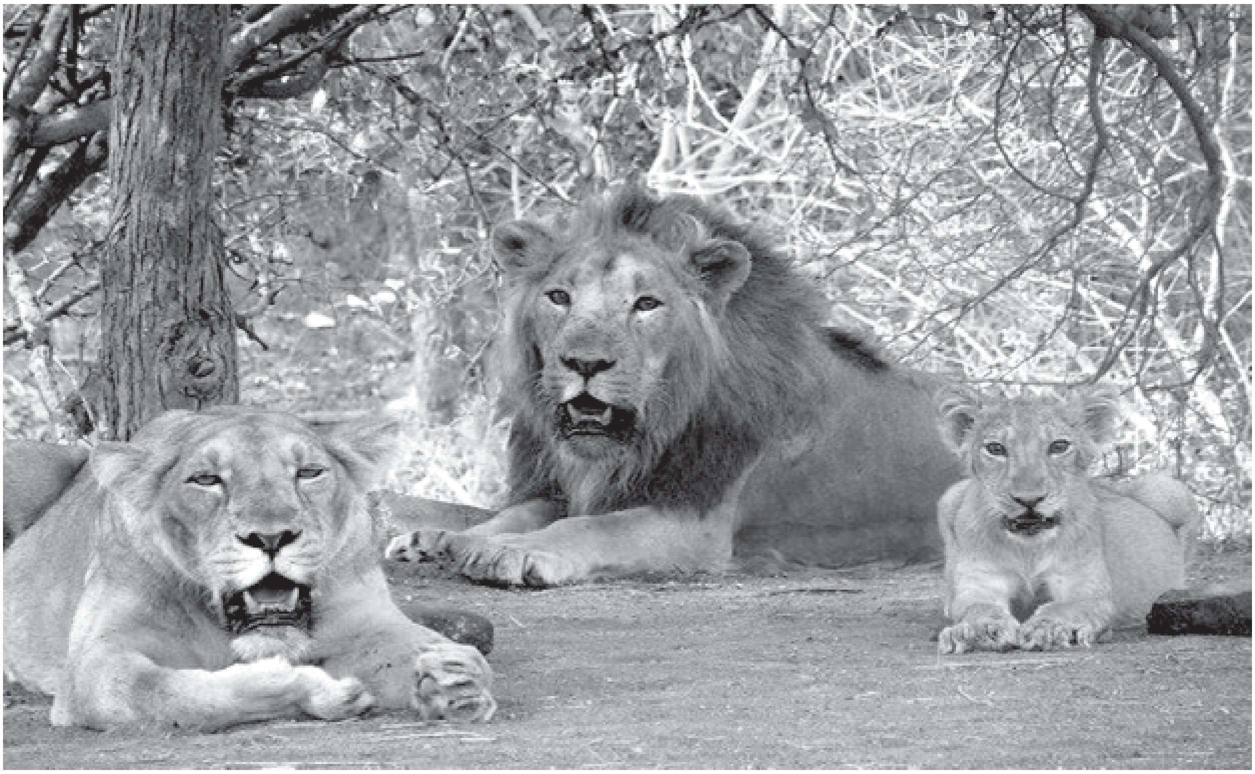

एक टन कागज की recycling से 17 पेड़ कटने से बचते हैं और हजारों लीटर पानी की बचत होती है। अब सोचिए, जब पर्वतारोही इतने कठिन हालात में कचरा वापस ला सकते हैं तो हमें भी अपने घर या दफ्तर में पेपर को अलग करके recycling में अपना योगदान जरूर देना चाहिए। जब देश का हर नागरिक ये सोचेगा कि देश के लिए मैं क्या बेहतर कर सकता हूँ, तभी मिलकर, हम, बड़ा परिवर्तन ला सकते हैं।

साथियो, बीते दिनों खेलो इंडिया गेम्स की बड़ी धूम रही। खेलो इंडिया के दौरान बिहार के पाँच शहरों ने मेजबानी की थी। वहाँ अलग-अलग category के मैच हुए थे। पूरे भारत से वहाँ पहुंचे athletes की संख्या पाँच हजार से भी ज्यादा थी। इन athletes ने बिहार की sporting spirit की, बिहार के लोगों से मिली आत्मीयता की, बड़ी तारीफ की है।

साथियो, बिहार की धरती बहुत खास है, इस आयोजन में यहाँ कई unique चीजें हुई हैं। खेलों इंडिया यूथ गेम्स का ये पहला आयोजन था, जो Olympic channel के जरिए दुनिया-भर में पहुंचा। पूरे विश्व के लोगों ने हमारे युवा खिलाड़ियों की प्रतिभा को देखा और सराहा। मैं सभी पदक विजेताओं, विशेषकर top के तीन winners - महाराष्ट्र, हरियाणा और राजस्थान को बधाई देता हूँ।

साथियो, इस बार खेलो इंडिया में कुल 26 रिकार्ड बने। Weight Lifting स्पर्धाओं में महाराष्ट्र की अस्मिता धोने, ओडिशा के हर्षवर्धन साहू और उत्तर प्रदेश के तुषार चौधरी के शानदार प्रदर्शन ने सबका दिल जीत लिया। वहीं महाराष्ट्र के साईराज परदेशी ने तो तीन record बना डाले। athletics में उत्तर प्रदेश के कादिर खान और शेख जीशान और राजस्थान के हंसराज ने शानदार प्रदर्शन किया। इस बार बिहार ने भी 36 medals अपने नाम किए। साथियो, जो खेलता है, वही खिलता है। Young Sporting Talent के लिए tournament बहुत मायने रखता है। इस तरह के आयोजन भारतीय खेलों के भविष्य को और सँवारने वाले हैं।

प्यारे देशवासियों, 20 मई को 'World Bee Day' मनाया गया, यानि एक ऐसा दिन जो हमें याद दिलाता है कि शहद सिर्फ मिठास नहीं, बल्कि सेहत, स्वरोजगार, और आत्मनिर्भरता की मिसाल भी है। पिछले 11 वर्षों में, मधुमक्खी पालन में, भारत में एक sweet revolution हुआ है। आज से 10-11 साल पहले भारत में शहद उत्पादन एक साल में करीब 70-75 हजार मीट्रिक टन होता था। आज यह बढ़कर करीब-करीब सवा-लाख मीट्रिक टन के आसपास हो गया है। यानि शहद उत्पादन में करीब 60% की बढ़ोतरी हुई है। हम Honey Production और export में दुनिया के अग्रणी देशों में आ चुके हैं। साथियों, इस positive impact में 'राष्ट्रीय मधुमक्खी पालन' और 'शहद मिशन' की बड़ी भूमिका है। इसके तहत मधुमक्खी पालन से जुड़े हजारों किसानों को Training दी गई, उपकरण दिए गए, और बाजार तक, उनकी, सीधी पहुँच बनाई गई।

साथियों, ये बदलाव सिर्फ आंकड़ों में नहीं दिखता, ये गाँव की जमीन पर भी साफ नजर आता है। छत्तीसगढ़ के कोरिया जिले का एक उदाहरण है, यहाँ आदिवासी किसानों ने 'सोन हनी' नाम से एक शुद्ध जैविक शहद brand बनाया है। आज वह शहद GeM समेत अनेक Online Portal पर बिक रहा है, यानि गाँव की मेहनत, अब, Global हो रही है। इसी तरह उत्तर प्रदेश, गुजरात, जम्मू-कश्मीर, पश्चिम बंगाल और अरुणाचल प्रदेश में हजारों महिलाएं और युवा अब honey उद्यमी बन चुके हैं। साथियों, और अब शहद की केवल मात्रा नहीं, उसकी शुद्धता पर भी काम हो रहा है। कुछ Start-up अब AI और Digital Technology से शहद की गुणवत्ता को प्रमाणित कर रहे हैं। आप अगली बार जब भी शहद खरीदें तो इन Honey उद्यमियों द्वारा बनाए गए शहद को जरूर आजमाएं, कोशिश करें कि किसी local किसान से, किसी महिला उद्यमी से भी शहद खरीदें। क्योंकि उस हर बूंद में स्वाद ही नहीं, भारत की मेहनत और उम्मीदें घुली होती हैं। शहद की ये मिठास - आत्मनिर्भर भारत का स्वाद है।

साथियों, जब हम शहद से जुड़े देशों के प्रयासों की बात कर रहे हैं, तो मैं आपको एक और पहल के बारे में बताना चाहता हूँ। ये हमें याद दिलाती है कि Honeybees की सुरक्षा सिर्फ पर्यावरण की नहीं, हमारी खेती और future generation की भी जिम्मेदारी है। ये उदाहरण है पुणे शहर का, जहाँ एक Housing society में मधुमक्खियों का एक छत्ता हटाया गया - शायद सुरक्षा के कारण या डर की वजह से। लेकिन इस घटना ने किसी को कुछ सोचने पर मजबूर कर दिया। अमित नाम के एक युवा ने तय किया कि bees को हटाना नहीं, उन्हें बचाना चाहिए। उन्होंने खुद सीखा, मधुमक्खियों पर search की और दूसरों को भी जोड़ना शुरू किया। धीरे-धीरे उन्होंने एक टीम बनाई, जिसे उन्होंने नाम दिया Bee Friends, यानि 'बी-मित्र'। अब ये Bee Friends, मधुमक्खियों के छत्तों को एक जगह से दूसरी जगह सुरक्षित तरीके से transfer करते हैं, ताकि लोगों को खतरा न हो और Honeybees भी जिंदा रहें। अमित जी के इस प्रयास का असर भी बड़ा शानदार हुआ है। Honeybees की colonies बच रही हैं। Honey production बढ़ रहा है, और सबसे जरूरी है, लोगों में awareness भी बढ़ रही है। ये पहल हमें सिखाती है कि जब हम प्रकृति के साथ ताल-मेल में काम करते हैं, तो उसका फायदा सबको मिलता है।

मेरे प्यारे देशवासियो, 'मन की बात' के इस episode में इस बार इतना ही, आप इसी तरह देश के लोगों की उपलब्धियों को समाज के लिए उनके प्रयासों को, मुझे भेजते रहिए। 'मन की बात' के अगले episode में फिर मिलेंगे, कई नए विषयों और देशवासियों की नई उपलब्धियों की चर्चा करेंगे। मुझे आपके संदेशों का इंतजार है। आप सबका बहुत-बहुत धन्यवाद, नमस्कार।

(प्रधानमंत्री जी के मन की बात के 122 वें एपिसोड के अंश)

गुप्त नीति का विरोध

डॉ सुशीला नैयर

29 मार्च '43

आज बापू का मौन था । श्री कटेली को बुखार आ गया। गला खराब है। बा का ठीक चलता है, लेकिन वह कुछ कमजोर हैं। भाई ने बताया रात में सोते समय उन्होंने बापू से पूछा, "जनता में विचारों के समन्वय के द्वारा संगठन हो सके तो सर्वोत्तम है, किंतु आज की परिस्थिति में अगर अहिंसा के मार्ग पर जनता को लाने के लिए गुप्त नीति अनिवार्य हो तो भी उसे आप क्या त्याज्य मानेंगे ?''

बापू ने उत्तर दिया, "हां।" बापू का मत है कि यह दलील भूल से भरी है। कहने लगे, "आज चाहे गुप्त नीति व्यवहार की दृष्टि से लाभदायक लगे, मगर अंत में यह देखने में आवेगा कि उससे फायदे की जगह हानि अधिक होती है। इस रास्ते से हम सामुदायिक अहिंसक क्रांति के ध्येय को नहीं पहुंच सकते। उलटे इस ध्येय के रास्ते में उससे रुकावट आ सकती है। मुझे इसमें शंका नहीं । इस चीज के गर्भ में ही उसकी निष्फलता के बीज पड़े हैं।''

30 मार्च '43

आज अखबार में खबर थी कि डॉ. बिधान राय को यहां आने की इजाजत नहीं मिली। बापू को शाम को कुछ जल्दी घुमाने ले गई। थोड़ी देर घूमकर वे महादेव भाई की समाधि पर फूल चढ़ाने को गये। मीराबहन नाराज हो गई कि इतनी जल्दी बापू को घुमाने नहीं ले जाना चाहिए था ।

31 मार्च 43

शाम को बापू मीराबहन के साथ बातें करने लगे। मीराबहन ने पूछा "आपका विचार है कि जो लोग गुप्त नीति से आंदोलन चला रहे हैं, वे अपने को सरकार के हवाले कर दें। मैं जानती हूं कि सतयुग की आदर्श स्थिति में ऐसा होना चाहिए, लेकिन हमें तो आज जैसी दुनिया है, उसी के साथ चलना है। बिना नेताओं के आंदोलन कैसे आगे बढ़े ?'' बापू बोले, "मेरा तो यही कहना है कि अपने को सरकार के हवाले कर देने के फलस्वरूप आंदोलन खूब आगे बढ़ेगा। हमारे साधन जितने पवित्र होंगे, उतना ही देश के लोगों के लिए अच्छा होगा। अगर मेरे बताये रास्ते पर चले होते तो दो में से एक बात होकर रहती । या तो सिर्फ वे लोग, जो सत्य और अहिंसा में पक्का विश्वास रखते हैं, आंदोलन में हिस्सा लेते, जिससे कि

बापू का मत है कि यह दलील भूल से भरी है। कहने लगे, "आज चाहे गुप्त नीति व्यवहार की दृष्टि से लाभदायक लगे, मगर अंत में यह देखने में आवेगा कि उससे फायदे की जगह हानि अधिक होती है। इस रास्ते से हम सामुदायिक अहिंसक क्रांति के ध्येय को नहीं पहुंच सकते। उलटे इस ध्येय के रास्ते में उससे रुकावट आ सकती है। मुझे इसमें शंका नहीं । इस चीज के गर्भ में ही उसकी निष्फलता के बीज पड़े हैं।

आंदोलन ठंडा न पड़ने पाता जैसा कि वह पड़ गया है; या कोई भी उसमें हिस्सा न लेता । इन दोनों रास्तों से हमें गुप्त नीति जैसे गलत तरीकों से छुटकारा मिल जाता । तोड़-फोड़ के आंदोलन को हमारे सिर मढ़कर खूब प्रचार किया गया है। बेशक तोड़-फोड़ वालों ने साहस और कुशलता तो बहुत दिखाई है, लेकिन इस सबका मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मैं जानता था कि तरीका गलत है और आंदोलन को जल्दी-से-जल्दी बंद हो जाना चाहिए। जब सरकार ने कहा कि उसने परिस्थिति पर काबू पा लिया है तो मैंने उसकी बात पर विश्वास कर लिया, लेकिन सरकार में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह देशव्यापी आंदोलन पर काबू पा सके। आंदोलन तो हमेशा नया बल पाकर चलता रहेगा ।''

मीराबहन बोलीं, "दुबारा जब आंदोलन होगा तो या तो पूर्ण अहिंसात्मक होगा या पूर्ण हिंसात्मक।" मैंने पूछा, "आपने तो कहा था कि इस वक्त हमारा लड़ाई का तरीका जेलें भरना नहीं है, फिर सरकार के हवाले अपने को कर देने की यह सलाह क्या उसके विरुद्ध नहीं है ?''

बापू कहने लगे, ''नहीं, मैंने कहा था कि हम गिरफ्तारी का आवाहन न करके मृत्यु का करें। अगर हमारे काम के दौरान में हम पकड़े जाते हैं तो कोई बात नहीं है। मान लो, जयप्रकाश अपने को सरकार के हवाले कर दे तो इसमें शक नहीं कि उसे कड़ी सजा मिलेगी, लेकिन उससे हमारा पक्ष मजबूत बनेगा । सरकार के हवाले अपने को करने से लोग अपने गलत कदम को वापस ले लेते हैं। उससे हमें कोई नुकसान नहीं हो सकता।"

मीराबहन कहने लगीं, "आपका यह विश्वास कि लोगों के प्रकट होने और परिणाम भुगतने से परिस्थिति सुधर जायगी, तर्क के आधार पर नहीं लगता, आपकी अंतप्रेरणा के आधार पर ही समझना चाहिए।'' बापू बोले, "वह तो है ही। सत्य और अहिंसा से किसी को हानि नहीं हो सकती।''

1 अप्रैल 43

शाम को बापू मीराबहन के साथ एमरी के भाषण की बातें करते रहे। बापू हंसकर कहने लगे, "या तो मैं इन बातों पर त्यौरी चढ़ाऊं या कटु बन जाऊं अथवा हंस दूं। हंस देना बहुत अच्छा है।''

पीछे बापू मनु की चौथी रीडर लेकर मीराबहन को उसमें से कुछ समझाते रहे और उनसे व मुझसे किताब पढ़ने को कहा। मनु को उन्होंने इतिहास और व्याकरण भी पढ़ाया। दोपहर को सख्त गर्मी रही। दिल्ली के जून महीने का सा मौसम है। शाम को ठंडी हवा चली। प्रार्थना का समय सवा आठ हो गया है।

2 अप्रैल 43

आज बापू को सुबह घूमते समय कमजोरी मालूम हो रही थी, कारण रात में नींद का कम आना और कल सुबह नाश्ता न करना हो सकता है। उपवास के समय पहले तीन-चार दिन तक बापू को कमजोरी महसूस नहीं होती थी। अब एक समय का नाश्ता छूटने का भी असर होता जान पड़ता है। दोपहर को आज भी नहीं सोयी, पढ़ती रही। सुबह भी प्रार्थना के बाद नहीं सोयी थी। वाइसराय का राजाजी आदि को जो उत्तर मिला है, वह गजब का है। समझ में नहीं आता कि कोई ठीक दिमाग वाला आदमी कैसे इस तरह की बातें कर सकता है। नीरो के या जार के जमाने में चाहे ऐसा होता रहा है मगर आजकल के जमाने में दुर्योधन की तरह सुई के नोक जितनी जमीन भी देने से इंकार करना मनुष्य को चकित कर देता है।

बा को कल से पेशाब में जलन की शिकायत है। आज और बढ़ी है। बुखार भी आ गया। पेशाब पानी सा साफ नहीं है। स्याहीचूस से छानने पर भी साफ नहीं हुआ। उसमें थोड़ी सी चर्बी और पीप है। पहले बी कोलाई हो चुका है। वही फिर उभरा होगा। प्रार्थना के बाद बा कहने लगीं, " मेरे पास बैठी रहो।" मैं बैठी रही। उन्हें नींद आई तब मछरदानी लगाकर चली आई। डॉ गिल्डर बंबई के मेयर चुने गए हैं।

4 अप्रैल, 43

बा की तबीयत काफी अच्छी है। कमजोरी है, लेकिन बुखार और जलन नहीं है।

बापू सुबह-शाम अब महादेवभाई की समाधि पर जाते हैं और आधा घंटा घूमते हैं। गर्मी कल से कुछ कम है। बापू के कमरे में तो तीन-चार दिन से खस की टट्टी है, इसलिए वहाँ खासी ठंडक रहती है।

5 अप्रैल, 43

बा की तबीयत अच्छी है। कमजोरी काफी है। बापू का मौन है। अच्छा नहीं लगता।

नाखून क्यों बढ़ते हैं?

हजारी प्रसाद द्विवेदी

बच्चे कभी-कभी चक्कर में डाल देनेवाले प्रश्न कर बैठते हैं। अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है। मेरी छोटी लड़की ने जब उस दिन पूछ दिया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, तो मैं कुछ सोच ही नहीं सका। हर तीसरे दिन नाखून बढ़ जाते हैं, बच्चे कुछ दिन तक अगर उन्हें बढ़ने दें, तो माँ-बाप अक्सर उन्हें डांटा करते हैं। पर कोई नहीं जानता कि ये अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते हैं। काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे, पर निर्लज्ज अपराधी की भांति फिर छूटते ही सेंध पर हाजिर। आखिर ये इतने बेहया क्यों हैं?

कुछ लाख ही वर्षो की बात है, जब मनुष्य जंगली था, वनमानुष जैसा। उसे नाखून की जरूरत थी। उसकी जीवन रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वद्वियों को पछाड़ना पड़ता था। नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था। फिर धीरे-धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा (रामचंद्रजी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे)। उसने हड्डियों के भी हथियार बनाए। इन हड्डी के हथियारों में सबसे मजबूत और सबसे ऐतिहासिक था देवताओं के राजा का वज्र, जो दधीचि मुनि की हड्डियों से बना था। मनुष्य और आगे बढ़ा। उसने धातु के हथियार बनाए। जिनके पास लोहे के शस्त्र और अस्त्र थे, वे विजयी हुए। देवताओं के राजा तक को मनुष्यों के राजा से इसलिए सहायता लेनी पड़ती थी कि मनुष्यों के राजा के पास लोहे के अस्त्र थे। असुरों के पास अनेक विद्याएं थी, पर लोहे के अस्त्र नहीं थे, शायद घोड़े भी नहीं थे। आर्यों के पास ये दोनों चीजें थी। आर्य विजयी हुए। फिर इतिहास अपनी गति से बढ़ता गया। नाग हारे, सुपर्ण हारे, यक्ष हारे, गंधर्व हारे, असुर हारे, राक्षस हारे। लोहे के अस्त्रों ने बाजी मार ली। इतिहास आगे बढ़ा। पलीते-वाली बंदूकों ने, कारतूसों ने, तोपों ने, बर्मा ने, बमवर्षक वायुयानों ने इतिहास को किस कीचड-भरे घाट तक घसीटा है, यह सबको मालूम है। नख-धर मनुष्य अब एटम बम पर भरोसा करके आगे की ओर

कुछ लाख ही वर्षो की बात है, जब मनुष्य जंगली या, वनमानुष जैसा। उसे नाखून की जरूरत थी। उसकी जीवन रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वद्वियों को पछाड़ना पड़ता था। नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था। फिर धीरे-धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा।

चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतरवाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के नखदतावलंबी जीव हो पशु के साथ एक ही सतह पर विचरने वाले और चरने वाले।

ततः किम्। मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने के लिए डाँटता है। किसी दिन कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि वह अब भी नाखून को जिलाए जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उसे काटे जा रहा है। वे कंबख्त रोज बढ़ते हैं, क्योंकि वे अंधे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है। मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर-युग का कोई अवशेष रह जाय, यह उसे असह्य है। लेकिन यह कैसे कहूँ। नाखून काटने से क्या होता है? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है। वह तो बढ़ती जा रही है। मनुष्य के इतिहास में हिरोशिमा का हत्याकांड बार-बार थोड़े ही हुआ है? यह तो उसका नवीनतम रूप है। मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ, तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पारावी वृत्ति के जीवन प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

> ***मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने के लिए डाँटता है। किसी दिन कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व वह अपने बच्चे को नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि वह अब भी नाखून को जिलए जा रही है और मनुष्य है कि ततः किम्। मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने के लिए डाँटता है। किसी दिन कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि वह अब भी नाखून को जिलाए जा रही है और मनुष्य...।***

कुछ हजार साल पहले मनुष्य ने नाखून को सुकुमार विनोदों के लिए उपयोग में लाना शुरू किया था। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' से पता चलता है कि आज से दो हजार वर्ष पहले का भारतवासी नाखूनों को जमके सँवारता था। उनके काटने की कला काफी मनोरंजक बताई गई है। त्रिकोण, वर्तुलाकार, चंद्राकार, दंतुल आदि विविध आकृतियों के नाखून उन दिनों विलासी नागरिकों के न जाने किस काम आया करते थे। उनको सिक्यक (मोम) और अलक्तक (आलता) से यत्नपूर्वक रगड़कर लाल और चिकना बनाया जाता था। गौड देश के लोग उन दिनों बड़े-बड़े नखों को पसंद करते थे और दाक्षिणात्य लोग छोटे नखों को। अपनी-अपनी रुचि है, देश की भी और काल की भी। लेकिन समस्त अधोगामिनी वृतियों की ओर नीचे खींचने वाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है, यह बात चाहूँ भी तो भूल नहीं सकता।

मानव-शरीर का अध्ययन करनेवाले प्राणि-विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भांति मानव शरीर में भी बहुत-सी अभ्यासजन्य सहज वृत्तियां रह गई हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियां अनायास ही, और शरीर के अनजान में भी, अपने-आप काम करती है। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है. दाँत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है। और असल में सहजात वृत्तियाँ अनजान की स्मृतियों को ही कहते हैं। हमारी भाषा में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। अगर आदमी अपने शरीर की, मन की और वाक् की अनायास घटनेवाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है? सोचना तो क्या, उसे इतना भी पता नहीं चलता कि उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजात वृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है। उन्हें काटने की जो प्रवृति है, वह उसकी मनुष्यता की निशानी है और यद्यपि पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गए हैं, पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है। पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे कोई और रास्ता खोजना चाहिए। अस्त्र बढ़ाने की प्रवृति मनुष्यता की विरोधिनी है।

मेरा मन पूछता है किस ओर? मनुष्य किस ओर बढ़

रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर या अस्त्र काटने की ओर? मेरी निर्बोध बालिका ने मानो मनुष्य जाति से ही प्रश्न किया है जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं? ये हमारी पशुता की निशानी है। भारतीय भाषाओं में प्राय: ही अँग्रेजी के इंडिपेंडेस शब्द का समानार्थक शब्द नहीं व्यवहृत होता। 15 अगस्त को जब अंग्रेजी भाषा के पत्र इंडिपेंडेन्स की घोषणा कर रहे थे, देशी भाषा के पत्र 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा कर रहे थे। इंडिपेंडेन्स' का अर्थ है अनधीनता या किसी की अधीनता का अभाव, पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है अपने ही अधीन रहना। अंग्रेजी में कहना हो, तो सेल्फडिपेंडेन्स' कह सकते हैं। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अँग्रेजी की अनुवर्तिता करने के बाद भी भारतवर्ष इंडिपेडेन्स को अनधीनता क्यों नहीं कह सका? उसने अपनी आजादी के जितने भी नामकरण किए स्वतंत्रता, स्वराज्य, स्वाधीनता उन सबमें 'स्व' का बंधन अवश्य रखा। यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परंपरा ही अनजान में, हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है? मुझे प्राणि-विज्ञानी की बात फिर याद आती है सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है। स्वराज होने के बाद स्वभावत: ही हमारे नेता और विचारशील नागरिक सोचने लगे हैं कि इस देश को सच्चे अर्थ में सुखी कैसे बनाया जाय। हमारे देश के लोग पहली बार यह सब सोचने लगे हैं, ऐसी बात नहीं है। हमारा इतिहास बहुत पुराना है। हमारे शास्त्रों में इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं से विचारा गया है। हम कोई नौसिखए नहीं है, जो रातों-रात अनजान जंगल में पहुंचाकर अरक्षित छोड़ दिए गए हो। हमारी परंपरा महिमामयी उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्ज्वल है। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह जरूर है कि परिस्थितियां बदल गई है। उपकरण नए हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है। पर मूल समस्याएँ बहुत अधिक नहीं बदली है। भारतीय चित्त जो आज भी 'अनधीनता के रूप में न सोचकर स्वाधीनता के रूप में सोचता है। वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। वह स्व के बंधन को आसानी से नहीं छोड़ सकता। अपनेआप पर अपने-आपके द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता है। मैं ऐसा तो नहीं मानता कि जो कुछ हमारा पुराना है, जो कुछ हमारा विशेष है, उससे हम चिपटे ही रहें। पुराने का मोह सब समय वांछनीय ही नहीं होता। मरे बच्चे को गोद में दबाए रहनेवाली 'बंदरिया मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती। परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसंधित्सा के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं। सो, हमें, परीक्षा करके हितकर बात सोच-लेनी होगी और अगर हमारे पूर्वसंचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आए, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

हमारी परंपरा महिमा-मयी उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्ज्वल है। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह जरूर है कि परिस्थितियों बदल गई है। उपकरण नए हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है। पर मूल समस्याएँ बहुत अधिक नहीं बदली है। भारतीय चित्त जो आज भी 'अनधीनता के रूप में न सोचकर स्वाधीनता के रूप में सोचता है। वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। वह स्व के बंधन को आसानी से नहीं छोड़ सकता।

जातियाँ इस देश में अनेक आई है। लड़ती-झगडती भी रही हैं, फिर प्रेम पूर्वक बस भी गई हैं। सभ्यता की नाना सीढ़ियों पर खड़ी और नाना और मुख करके चलनेवाली इन जातियों के लिए एक सामान्य धर्म खोज निकालना कोई सहज बात नहीं थी। भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बंधनों से अपने को बाँधना। मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है। आहार-निद्रा आदि पशु सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही है, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमे संयम है. दूसरे

के सुख-दुख के प्रति समवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के उद्भावित बंधन हैं। इसीलिए मनुष्य झगडे-टंटे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर चढ़ दौड़ने वाले अविवेकी को बुरा समझता है और वचन, मन और शरीर से किए गए असत्याचरण को गलत आचरण मानता है। यह किसी भी जाति या वर्ण या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्यमात्र का धर्म है। महाभारत में इसीलिए निर्वैर भाव, सत्य और अक्रोध को सब वर्णों का सामान्य धर्म कहा

एतद्धि त्रित्यं श्रेष्ठ सर्वभूतेषु भारत। निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च।।

अन्यत्र इसमें निरंतर दानशीलता को भी गिनाया गया है (अनुशासन प.. १२०. १०)।

गौतम ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके दुख सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्म निर्मित बधन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है। मुझे आश्चर्य होता है कि अनजान में भी हमारी भाषा में यह भाव कैसे रह गया है। लेकिन मुझे नाखून के बढ़ने पर आश्चर्य हुआ था। अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाड़ता है। और आदमी है कि सदा उससे लोहा लेने को कमर कसे है।

ऐसा कोई दिन आ सकता है, जबकि मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बंद हो जाएगा। प्राणिशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस प्रकार उसकी पूँछ झड़ गई है। उस दिन मनुष्य की, पशुता भी लुप्त हो जाएगी। शायद उस दिन वह मारणास्त्रों का प्रयोग भी बंद कर देगा।

मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े-बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। एक बूढ़ा कहता था बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्म तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा प्रेम ही बड़ी चीज है. क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, स्व का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई, आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी हुई। मैं हैरान होकर सोचता हूँ बूढ़े ने कितनी गहराई में पैठकर मनुष्य की वास्तविक चरितार्यता का पता लगाया था।

ऐसा कोई दिन आ सकता है, जबकि मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बंद हो जाएगा। प्राणिशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस प्रकार उसकी पूँछ झड़ गई है। उस दिन मनुष्य की, पशुता भी लुप्त हो जाएगी। शायद उस दिन वह मारणास्त्रों का प्रयोग भी बंद कर देगा। तब तक इस बात से छोटे बच्चों को परिचित करा देना वांछनीय जान पड़ता है कि नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है। बृहत्तर जीवन में रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है। मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास बिना सिखाए आ जाती है. वह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभाव का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है। बच्चे यह जाने तो अच्छा हो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की महिमा को सूचित करती है।

सफलता और चरितार्यता में अंतर है। मनुष्य मारणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सफलता का नाम दे रखा है। परंतु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है. अपने को सबके मंगल के लिए नि:शेष भाव से दे देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात वृति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता से आना चाहती है, उसको काट देना उस स्व-निधीरित, आत्म-बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।

नाखून बढ़ते हैं तो बढ़े, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।

पर्यावरण : खाने का और दिखाने का और

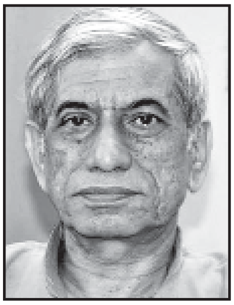

अनुपम मिश्र

पांच जून को 'पर्यावरण दिवस' मनाया जाता है। गिनती में यह कुछ भी हो, पर चरित्र में, पर्यावरण की समझ में, यह पहले समारोह से अलग नहीं होता। 1972 में सौ से अधिक देश संयुक्त राष्ट्र संघ के छाते के नीचे पर्यावरण की समस्याओं को लेकर इकट्ठे हुए थे। तब विकास और पर्यावरण में छत्तीस का रिश्ता माना गया था। सरकारें आज भी पर्यावरण और विकास में खटपट देख रही है, इसलिए प्रतिष्ठित हो चुके विकास-देवता पर सिंदूर चढ़ाती चली जा रही हैं। लेकिन विकास के इसी सिंदूर ने पिछले दौर में पर्यावरण की समस्याओं को पैदा किया है और साथ ही अपने चटख लाल रंग में उन्हें ढकने की भी कोशिश की है।

सरकारी कैलेंडर में देखें तो पर्यावरण पर बातचीत 1972 में हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के स्टॉकहोम सम्मेलन से शुरू होती है। पश्चिम के देश चिंतित थे कि विकास का कुल्हाड़ा उनके जंगल काट रहा है, विकास की पताकानुमा उद्योग की ऊंची चिमनियां, संपन्नता के वाहन, मोटर गाड़ियां आदि उनके शहरों की हवा ख़राब कर रही हैं, देवता सरीखे उद्योगों से निकल रहा 'चरणामृत' वास्तव में वह गंदा और जहरीला पानी है, जिसमें उनकी सुंदर नदियां, नीली झीलें अंतिम सांसें गिन रही हैं। ये देश जिस तकनीक ने उन्हें यह दर्द दिया था, उसी में इसकी दवा खोज रहे थे। पर तीसरी दुनिया के ज्यादातर देशों को लग रहा था कि पर्यावरण संरक्षण की यह नई बहस उनके देशों के विकास पर ब्रेक लगा कर उन्हें पिछड़ा ही रहने देने की साजिश है। ब्राजील ने तब जोरदार घोषणा की थी कि हमारे यहां सैकड़ों साफ नदियां हैं, चले आओ, इनके किनारे अपने उद्योग लगाओ और उन्हें गंदा करो। हमें पर्यावरण नहीं, विकास चाहिए। भारत ने ब्राजील की तरह बाहर का दरवाजा जरूर नहीं खोला, लेकिन पीछे के आंगन का दरवाजा धीरे से खोलकर कहा था कि

महीनों से मन बेहद-बेहद उदास है। उदासी की कोई खास वजह नहीं, कुछ तबीयत ढीली, कुछ आसपास के तनाव और कुछ उनसे टूटने का डर, खुले आकाश के नीचे भी खुलकर साँस लेने की जगह की कमी, जिस काम में लगकर मुक्ति पाना चाहता हूँ, उस काम में हजार बाधाएँ; कुल ले-देकर उदासी के लिए इतनी बड़ी चीज नहीं बनती।

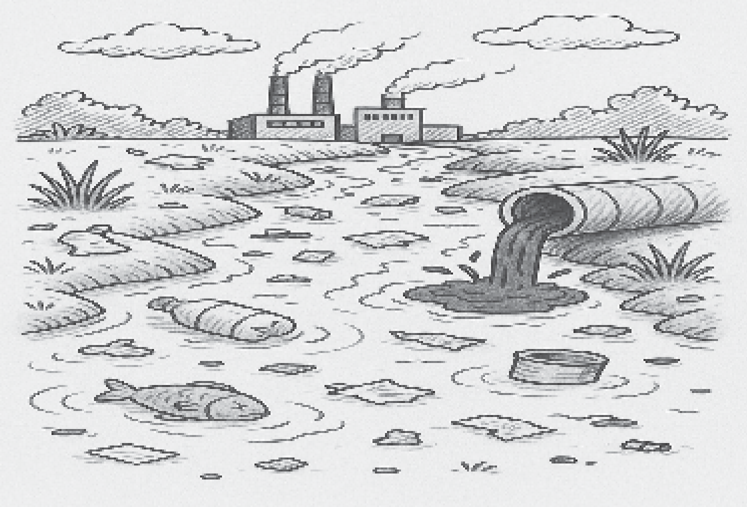

गरीबी से बड़ा कोई प्रदूषण नहीं है। गरीबी से निपटने के लिए विकास चाहिए। और इस विकास से थोड़ा बहुत पर्यावरण नष्ट हो जाए तो वह लाचारी है हमारी। ब्राजील और भारत के ही तर्क के दो छोर थे और इनके बीच में थे वे सब देश जो अपनी जनसंख्या को एक ऐसे भारी दबाव की तरह देखते थे, जिसके रहते वे पर्यावरण संवर्धन के झंडे नहीं उठा पाएंगे। इस दौर में वामपंथियों ने भी कहा कि 'हम पर्यावरण की विलासिता नहीं ढो सकते।'

इस तरह की सारी बातचीत ने एक तरफ तो विकास की उस प्रक्रिया को और भी तेज किया जो प्राकृतिक साधनों के दोहन पर टिकी है और दूसरी तरफ गरीबों की जनसंख्या को रोकने के कठोर-से-कठोर तरीके ढूंढ़े। इस दौर में कई देशों में संजय गांधियों का उदय हुआ, जिन्होंने पर्यावरण संवर्धन की बात आधे मन और आधी समझ से, पर परिवार नियोजन का दमन चलाया पूरी लगन से। लेकिन इस सबसे पर्यावरण की कोई समस्या हल नहीं हुई, बल्कि उनकी सूची और लंबी होती गई।

पर्यावरण की समस्या को ठीक से समझने के लिए हमें समाज में प्राकृतिक साधनों के बंटवारे को, उसकी खपत को समझना होगा। सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायर्नमेंट के निदेशक अनिल अग्रवाल ने इस बंटवारे का एक मोटा ढांचा बनाया था। कोई 5 प्रतिशत आबादी प्राकृतिक साधनों के 60 प्रतिशत भाग पर कब्जा किए हुए है। 10 प्रतिशत आबादी के हाथ में कोई 25 प्रतिशत साधन हैं। फिर कोई 25 प्रतिशत लोगों के पास 10 प्रतिशत साधन हैं। लेकिन 60 प्रतिशत की फटी झोली में मुश्किल से 5 प्रतिशत प्राकृतिक साधन हैं।

हालत फिर ऐसी भी होती, तो एक बात थी। लेकिन इधर 5 प्रतिशत हिस्से की आबादी लगभग थमी हुई है और साथ ही जिन 60 प्रतिशत प्राकृतिक साधनों पर आज उसका कब्जा है, वह लगातार बढ़ रहा है। दूसरे वर्ग की आबादी में बहुत थोड़ी बढ़ोत्तरी हुई है और शायद उनके हिस्से में आए प्राकृतिक साधनों की मात्रा कुछ स्थिर-सी है। तीसरे 25 प्रतिशत की आबादी में वृद्धि हो गई है और उनके साधन हाथ से निकल रहे हैं। इसी तरह चौथे 60 प्रतिशत वाले वर्ग की आबादी तेजी से बढ़ चली है और दूसरी तरफ उनके हाथ में बचे-खुचे साधन भी तेजी से कम हो रहे हैं।

यह चित्र केवल भारत नहीं, पूरी दुनिया का है। और इस तरह देखें तो कुछ की ज्यादा खपत वाली जीवन शैली के कारण ज्यादातर की, 80-85 प्रतिशत लोगों की जिंदगी के सामने आया संकट समझ में आ सकता है। इस चित्र का एक और पहलू है। आबादी का तीन-चौथाई हिस्सा बस किसी तरह जिंदा रहने की कोशिश में अपने आसपास के बचे-खुचे पर्यावरण को बुरी तरह नोचता-सा दिखता है तो दूसरी तरफ वह 5 प्रतिशत वाला भाग पर्यावरण के ऐसे व्यापक और सघन दोहन में लगा है जिसमें भौगोलिक दूरी कोई अर्थ नहीं रखती। कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश में लगे कागज उद्योग आसपास के जंगलों को हजम करने के बाद असम और उधर अंडमान निकोबार के जंगलों को भी साफ करने लगे हैं। जो जितना ताकतवर है चाहे वह उद्योग हो या शहर, उतनी दूरी से किसी कमजोर का हक छीन कर अपने लिए प्राकृतिक साधन का दोहन कर रहा है। दिल्ली जमुना किनारे है, उसका पानी तो वह पिएगी ही, पर कम पड़ेगा तो दूर गंगा का पानी भी खींच लाएगी। इंदौर पहले अपनी छोटी-सी खान नदी को अपने प्रदूषण से मार देगा और फिर दूर बह रही नर्मदा का पानी उठा लाएगा। भोपाल पहले अपने समुद्र जैसे विशाल ताल को कचराघर बना लेगा, फिर 80 किलोमीटर दूर बह रही नर्मदा से पीने के पानी का प्रबंध करने की योजना बना सकता है। पर नर्मदा के किनारे ही बसा जबलपुर नर्मदा के पानी से वंचित रहेगा, क्योंकि इतना पैसा नहीं है।

कुल मिलाकर प्राकृतिक साधनों की इस छीना झपटी ने, उनके दुरुपयोग ने पर्यावरण के हर अंग पर चोट की है और इस तरह सीधे उससे जुड़ी आबादी के एक बड़े भाग को और भी बुरी हालत में धकेला है। आधुनिक विज्ञान,

तकनीक और विकास के नाम पर हो रही यह लूटपाट प्रकृति से (खास कर उसके ऐसे भंडारों से, जो दोबारा नहीं भरे जा सकेंगे, जैसे कोयला, खनिज पेट्रोल आदि) पहले से कहीं ज्यादा कच्चा माल खींच कर उसे अपनी जरूरत के लिए नहीं, लालच के लिए पक्के माल में बदल रही है। विकास कच्चे माल को पक्के माल में बदलने की प्रक्रिया में जो कचरा पैदा करता है, उसे ठीक से ठिकाने भी लगाना नहीं चाहता। उसे वह ज्यों-का-त्यों प्रकृति के दरवाजे पर पटक आना जानता है। इस तरह इसने हर चीज को एक ऐसे उद्योग में बदल दिया है जो प्रकृति से ज्यादा-से-ज्यादा हड़पता है और बदले में इसे ऐसी कोई चीज नहीं देता, जिससे उसका चुकता हुआ भंडार फिर से भरे।

और देता भी है तो ऐसी रद्दी चीजें, धुआं, गंदा जहरीला पानी आदि कि प्रकृति में अपने को फिर संवारने की जो कला है, उसका जो संतुलन है वह डगमगा जाता है। यह डगमगाती प्रकृति, बिगड़ता पर्यावरण नए-नए रूपों में सामने आ रहा है। बाढ़ नियंत्रण की तमाम कोशिशों के बावजूद पिछले दस सालों में देश के पहले से दुगने भाग में, 2 करोड़ हेक्टेयर के बदले 4 करोड़ हेक्टेयर में बाढ़ फैल रही है। कहां तो देश के 33 प्रतिशत हिस्से को वन से ढकना था, कहां अब मुश्किल से 10 प्रतिशत वन बचा है। उद्योगों और बड़े-बड़े शहरों की गंदगी ने देश की 14 बड़ी नदियों के पानी को प्रदूषित कर दिया है। गंदे पानी से फैलने वाली बीमारियों, महामारियों के मामले, जिनमें सैकड़ों लोग मरते हैं कभी दबा लिए जाते हैं तो कभी इस वर्ष की तरह सामने आ जाते हैं। इसी तरह कलकत्ता जैसे शहरों की गंदी हवा के कारण वहां की आबादी का एक बड़ा हिस्सा सांस, फेफड़ों की बीमारियों का शिकार हो रहा है। शहरों के बढ़ते क़दमों से खेती लायक़ अच्छी जमीन कम हो रही है, बिजली बनाने और कहीं-कहीं तो खेतों के लिए सिंचाई का इंतजाम करने के लिए बांधे गए बांधों ने अच्छी उपजाऊ जमीन को डुबोया है। इस तरह सिकुड़ रही खेती की जमीन ने जो दबाव पैदा किया उसकी चपेट में चारागाह या वन भी आए हैं। वन सिमटें हैं तो उन जंगली जानवरों का सफाया होने लगा है जिनका यह घर था।

किसान नेता शरद जोशी ने खेतों के मामले में जिस इंडिया और भारत के बीच एक टकराव की-सी हालत देखी है: पर्यावरण के सिलसिले में प्राकृतिक साधनों के अन्याय भरे बंटवारे में यह और भी भयानक हो उठती है। इसमें इंडिया बनाम भारत तो मिलेगा, यानी शहर गांव को लूट रहा है, तो शहर-शहर को भी लूट रहा है, गांव-गांव को भी और सबसे अंत में यह बंटवारा लगभग हर जगह के आदमी और औरत के बीच भी होता है। उदाहरण के लिए दिल्ली में ही जमनापार के लोगों का पानी छीन कर दक्षिण दिल्ली की प्यास बुझाई जाती है, एक ही गांव में अब तक 'बेकार' जा रहे जिस गोबर से गरीब का चूल्हा जलता था अब संपन्न की गोबर गैस बनने लगी है और घर के लिए पानी, चारा ईंधन जुटाने में हर जगह आदमी के बदले औरत को खपना पड़ता है।

बिगड़ते पर्यावरण की इसी लंबी सूची के साथ-ही-साथ सामाजिक अन्यायों की एक समानांतर सूची भी बनती है। इन समस्याओं का सीधा असर बहुत से लोगों पर पड़ रहा है। पर क्या कोई इन समस्याओं से लड़ पाएगा? बिगड़ते पर्यावरण को संवार न पाएं तो फिलहाल कम-से-कम उसे और बिगड़ने से रोक पाएंगे क्या? इन सवालों का जवाब ढूंढ़ने से पहले बिगड़ते पर्यावरण के मोटे-मोटे हिस्सों को टटोलना होगा।

विकास की सभी गतिविधियां 'उद्योग' बन गई हैं या बनती जा रही हैं। खेती आज अनाज पैदा करने का उद्योग है, बांध बिजली बनाने या सिंचाई करने का उद्योग है, नगरपालिकाएं शहरों को साफ पानी देने या उसका गंदा पानी ठिकाने लगाने का उद्योग है। सचमुच जो उद्योग हैं वे अपनी जगह हैं ही। इन सभी तरह के उद्योगों से चार तरह का प्रदूषण हो रहा है। उद्योग छोटा हो या बड़ा, एक कमरे में चलने वाली मंदसौर की स्लेट-पैंसिल यूनिट हो या नागदा में बिड़ला परिवार की फैक्टरी या समाजवादी सरकार का कारखाना-इन सबमें भीतर का पर्यावरण कुछ कम-ज्यादा खराब रहता है। इसका शिकार वहां काम करने वाला मजदूर बनता है। वह संगठित है तो भी और असंगठित हुआ तो और भी ज्यादा। फिर इन सबसे बाहर निकलने वाले कचरे से बाहर का प्रदूषण फैल रहा है। यह जहरीला धुआं, गंदा पानी वगैरह है। इसकी शिकार उस

उद्योग के किनारे या कुछ दूर तक रहने वाली आबादी होती है। तीसरी तरह का प्रदूषण इन उद्योगों से पैदा हो रहे पक्के माल का है। जैसे रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाएं आदि। चौथा प्रदूषण वहां होता है जहां से इन उद्योगों का कच्चा माल आता है।

इनमें से पहले तीन तरह के प्रदूषणों का कुछ हल निकल सकता है, वह आज नहीं निकल पाया है तो इसका कारण है मजदूर और नागरिक आंदोलनों की सुस्ती। आज भी परंपरागत मजदूर आंदोलन उद्योग के भीतर के प्रदूषण को अपने संघर्ष का मुद्दा नहीं बना पाया है। ज्यादातर लड़ाई मजदूरी वेतन या बोनस को लेकर होती है। इसलिए कभी प्रदूषण का सवाल उठे भी तो इसे भी पैसे से तोल लिया जाता है। मध्य प्रदेश में सारणी बिजली घर की मजदूर यूनियन ने धुआं कम करने की मांग के बदले धुआं-भत्ता मांगा है।

दूसरा प्रदूषण उद्योग से बाहर निकलने वाली चीजों का है। अगर उससे पीड़ित नागरिक संगठित हो जाएं तो उससे भी लड़ा जा सकता है। पक्के माल के रूप में ही सामने आ रहे प्रदूषण से लड़ना जरा कठिन होगा, क्योंकि इसके लिए उन चीजों की खपत को ही चुनौती देनी पड़ेगी। लेकिन विकास के इस ढांचे के बने रहते चौथी तरह के, प्राकृतिक साधनों के कच्चे माल के रूप में दोहन के कारण हो रहे प्रदूषण से लड़ना सबसे कठिन काम होगा क्योंकि एक तो इस तरह का प्रदूषण हमारे आसपास नहीं काफी दूर होता है और उसका जिन पर असर पड़ता है-वनवासियों पर, मछुआरों पर, बंजारा समुदायों पर, छोटे किसानों, भूमिहीनों पर, वे सब हमारी-आपकी आंखों से ओझल रहते हैं।

ऐसी जगहों से भी विरोध की कुछ आवाजें उठ जरूर रही हैं पर उनकी कोशिशें पूरे समाज की धारा के एकदम विपरीत होने के कारण जल्दी दब जाती हैं, दबा दी जाती हैं। ऐसे आंदोलन अक्सर अपने बचपन में ही असमय मर जाते हैं। फिर भी पर्यावरण के बचाव के लिए उठी इन छोटी-मोटी आवाजों ने सरकार के कान खड़े किए हैं। पर्यावरण की वास्तविक चिंता की फुसफुसाहट बढ़े तो उसे नक़ली चिंता के एक लाउडस्पीकर से भी दबाया जा सकता है। बेमन से कुछ विभाग, कुछ कानून बना दिए गए हैं। उनको लागू करने वाला ढांचा जन्म से ही अपाहिज रखा जाता है। जल प्रदूषण नियंत्रण क़ानून को बने 10 साल हो जाएंगे। पर आज तक उसने नदियों को गिरवी रख रहे उद्योगों को, नगरपालिकाओं को कोई चुनौती भी नहीं दी है। पहले केंद्र में और अब सभी राज्यों में खुल रहे पर्यावरण विभाग भी उन थानों से बेहतर नहीं हो पाएंगे जो अपराध कम करने के लिए खुलते हैं।

पर्यावरण की इस चिंता ने पिछले दिनों पर्यावरण शिक्षा का भी नारा दिया है। विश्वविद्यालयों में तो यह शिक्षा शुरू हो गई है, अब स्कूलों में भी यह लागू होने वाली है। पर इस मामले में शिक्षा और चेतना का फर्क़ करना होगा। पर्यावरण की चेतना चाहिए, शिक्षा या डिग्री नहीं। चेतना बिगड़ते पर्यावरण के कारणों को ढूंढ़ने और उनसे लड़ने की ओर ले जाएगी, महज शिक्षा विशेषज्ञ तैयार करेगी जो अंततः उन्हीं अपाहिज विभागों में नौकरी पा लेंगे। नकली चिंता का यह दायरा हजम किए जा रहे पर्यावरण से ध्यान हटाने के लिए ऐसी ही दिखावटी चीजें, हल और योजनाएं सामने रखता जाएगा। जब तक पर्यावरण की चेतना नहीं जागती, जब तक विकास के इस देवता पर चढ़ाया जा रहा सिंदूर नहीं उतारा जाता तब तक पर्यावरण लूटा जाता रहेगा, उस पर टिकी तीन-चौथाई आबादी की जिंदगी बद से बदतर होती जाएगी। लेकिन विकास की इस धारा को चुनौती देकर विकल्प खोजना एक बड़ा सवाल है। अन्याय गैर बराबरी से लड़ने की प्रेरणा देने वाली मार्क्सवाद विचाराधाराओं तक में विकास के उसी ढांचे को अपनाया गया है जो पर्यावरण के क़ायमी उपयोग ढूंढ़े बिना पर्यावरण बिगड़ता ही जाएगा। गरीबी-गैरबराबरी बढ़ेगी, सामाजिक अन्यायों की बाढ़ आएगी। समाज का एक छोटा-सा लेकिन ताक़तवर भाग बड़े हिस्से का हक छीन कर पर्यावरण खाता रहेगा, बीच-बीच में दिखाने के लिए कुछ संवर्धन की बात भी करता रहेगा। खाने और दिखाने के इस फर्क को समझे बिना 5 जून के समारोह या पूरे साल भर चलने वाली चिंता एक कर्मकांड बनकर रह जाएगी।

धरती मां की यही पुकार मिट्टी पानी और बयार

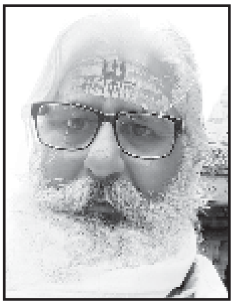

सुबोध कुमार वर्मा

वर्षों से विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर महज कागजी औपचारिकता को पूरा करते हुए प्रत्येक वर्ष पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में सरकारी प्रयासों की दुहाई दी जाती है यह परम्परा कोई नयी नही है। इसके बावजूद आज धरती की हालत किसी से छिपी नहीं है। प्रकृति के कार्यों को महज आंकड़ों से न खेला जाये। ध्यान रखें पेड़ों की जगह धरती के सीने में है कागजों में नही। प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों से मनुष्य के जीवन की डोर बंधी हुई है जिसके टूटते ही जीवन की सम्भावना भी समाप्त हो जाती है। सत्यता यह है कि आज मनुष्य की लालची भोगवादी प्रवृत्ति के कारण जल, जंगल और जमीन खतरे में हैं। न तो पीने को शुद्ध पानी है और न ही सांस लेने के लिए शुद्ध वायु है कारण विकास के नाम पर प्राकृतिक जंगलों को काटकर उनके स्थान पर कंक्रीट के जंगलों को उगाने की परम्परा का अंधानुकरण करना है। प्राकृतिक ताना–बाना बिगड़ते ही सामाजिक व्यवस्था का बिगड़ना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। मनुष्य का रहन–सहन और खान–पान उसकी सोच को सीधे तौर पर प्रभावित करता है। आज धरती के सीने में रासायनिक खाद डालकर उसकी उर्वरक शक्ति को नष्ट कर दिया गया है। जो भी उत्पाद हम ले रहे हैं उनमें खतरनाक रसायन पहले ही मौजूद हैं जो मनुष्य के जीवन के लिए ख़तरनाक हैं। गम्भीर बीमारी कब कैसे हो गयी इसका किसी को कुछ नहीं पता चल पाता। अत्यधिक पेड़ों के कटान के कारण वायुमंडल में मौजूद खतरनाक तत्व किसी भी प्राणी के स्वास्थ्य के लिए सही नहीं हैं। पुराने पेड़ों के कटान के कारण उन पर वास करने वाली पक्षियों की दुर्लभ प्रजातियां आज विलुप्त हो चुकी हैं। आखिर ये कैसा विकास है जो सभी के लिए खतरे की घंटी बन चुका है। इस पर प्रत्येक व्यक्ति को आत्ममंथन करना चाहिए विचार करना चाहिए। यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि पर्यावरण की रक्षा का दायित्व सभी का है केवल सरकारी तन्त्र पर निर्भर रहना महज बेवकूफी है। इस धरती पर रहने वाले हरेक व्यक्ति का यह पहला काम है कि वह अधिक से अधिक पौधारोपण करते हुए उनकी रक्षा के लिए निरन्तर प्रयासरत रहे। क्योंकि जल और वायु सभी प्राणियों के जीवन के लिए अनिवार्य हैं, मनुष्य के जीवन से

मनुष्य का रहन–सहन और खान–पान उसकी सोच को सीधे तौर पर प्रभावित करता है। आज धरती के सीने में रासायनिक खाद डालकर उसकी उर्वरक शक्ति को नष्ट कर दिया गया है। जो भी उत्पाद हम ले रहे हैं उनमें खतरनाक रसायन पहले ही मौजूद हैं जो मनुष्य के जीवन के लिए ख़तरनाक हैं। गम्भीर बीमारी कब कैसे हो गयी इसका...।

हवा और पानी को निकाल दिया जाए तो उसके पास बचेगा क्या ? इस सवाल पर गम्भीरता के साथ सभी को चिन्तन और मनन करना चाहिए। प्रकृति प्रदत्त जीवन की इस अनमोल विरासत को संभालकर रखना होगा। तभी बाकी तामझाम सही साबित हो सकेंगे वरना सब धरा रह जायेगा इस सच्चाई को नकारना अपने और अपनी भावी पीढ़ी के जीवन से खिलवाड़ करने जैसा है। धरती का हृदय कितना विशाल है जो जैसा बोयेगा वैसा ही पायेगा। जैसा बीज डालोगे वैसा ही लौटा देगी। धरती माता आज मनुष्य के लालच की शिकार होकर मरणासन्न पड़ी है आपदाओं के माध्यम से बार बार सचेत कर रही है लेकिन बहरे कानों में ये आवाज कैसे आये जिनके कान सही हैं वो सुनकर भी बोल नहीं पाते इसलिए हमारे महापुरूषों, विख्यात पर्यावरणविदों विशेषज्ञों और सामाजिक कार्यकर्ताओं ने लम्बे समय तक समर्पित भाव से पहाड़ी और हिमालयी क्षेत्रों का भ्रमण किया और अध्ययन किया उन्होंने पहाड़ तथा हिमालय की पीड़ा को भलीभांति समझकर आध्यात्मिक और वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर हिमालयी क्षेत्रों के विकास के लिए सरकार से हिमालय नीति की मांग की। लेकिन लम्बे समय से सरकारों ने पहाड़ के विकास में उनके अनुभवों की अनदेखी की है। स्थानीय लोगों की स्थिति तथा उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विकास की नीति बनायी जायेगी तभी इसका लाभ मिल सकेगा। पहाड़ से तो हमारी संस्कृति जुड़ी हुयी है। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि वर्तमान समय में पहाड़ का पानी और पहाड़ की जवानी दोनों पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। ये दोनों ही पहाड़ के काम नहीं आ रहे हैं। पहाड़ के विकास पर महज कागजी औपचारिकता पूर्ण करना सही नहीं है। क्योंकि देश का विकास पहाड़ के जीवनदायी जल और जंगलों पर टिका हुआ है। अगर ये समृद्ध नहीं रहेंगे तो देश भी समृद्ध नही रह सकेगा। पूज्य गुरूदेव विश्वविख्यात पर्यावरणविद और चिपको आन्दोलन के प्रणेता पद्मविभूषण श्री सुन्दर लाल बहुगुणा जी अन्य प्रमुख पर्यावरणविदों के लम्बे अनुभव वैज्ञानिक अनुसंधान और आध्यात्मिक ज्ञान के आधार पर हिमालय के विकास की नीति को लागू किया जाना चाहिए। हमें आस्था और विश्वास के साथ पहाड़ का स्थायी विकास करने के लिए हिमालय नीति को अपनाना चाहिए। पूज्य गुरुदेव श्री सुंदरलाल बहुगुणा जी ने जनहित में पर्यावरण नीति बनाने के लिए पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को विवश कर दिया था आज इस नीति का अक्षरशः पालन किया जाना चाहिए तभी पर्यावरण संरक्षण की संकल्पना को बल मिलेगा और राष्ट्र विकास करेगा। धरती माता सभी की है और जिसने भी इस धरती पर जन्म लिया है उसको प्रकृति ने बिना किसी भेदभाव के जीने का अवसर दिया है। मनुष्य के रूप में धरती को बचाने की जिम्मेदारी सभी की प्राथमिकता होनी चाहिए। हमारे शास्त्रों में धरती को माता कहा गया है क्योंकि जीवन की उत्पत्ति के बाद धरती ही मनुष्य का बोझ उठाती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक केवल माता ही मनुष्य का बोझ उठा सकती है अन्य किसी के अंदर यह सामर्थ्य नही है। यही उसकी उदारता है। असहनीय कष्टों को भी बड़ी ही उदारता के साथ चुपचाप सहने की सामर्थ्य भी माता में ही है। माता पर सबका बराबर का अधिकार होता है इसलिए उसकी रक्षा और सुरक्षा भी बिना किसी भेदभाव के सभी को करनी चाहिये। लेकिन अफसोस यही है कि मनुष्य ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों का जमकर शोषण किया है और धरती माता के वृक्ष रूपी सिंगार को उजाड़ कर छिन्न-भिन्न कर दिया है। ऐसे में मनुष्य को स्थायी सुख और शांति कदापि नहीं मिल सकती है। सच्चा सपूत वही है जो मुसीबतों के समय मां के काम आये उसकी रक्षा करे। आज मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए हरे-भरे जंगलों को उजाड़ कर धरती माता की मर्यादाओं को खण्डित कर दिया है। धरती पर बहने वाली निर्मल नदियों की सरल और स्वाभाविक धारा को बांधकर बड़े-बड़े बांध बना डाले और अपने ही विनाश की लीला रच डाली। आज जल जंगल और जमीन खतरे में है। इसको बचाने में ही समस्त मानव जाति की भलाई है। मनुष्य ने वृक्षों से हरे-भरे जंगलों का विकास के नाम पर विनाश कर दिया। धरती की उपजाऊ मिट्टी को धूल बना डाला। नदियों की सरल स्वाभाविक निर्मल धारा को बांधकर बड़े-बड़े बांध बनाकर अपने शौर्य की गाथा से विनाश की लीला रच डाली और स्वयं ही अपने अस्तित्व को खतरे में डाल बैठा। ये कैसा विकास है। धरती मां की यही पुकार मिट्टी पानी और बयार इन शब्दों

की सार्थकता को समझने में जीवन की सच्चाई छिपी हुई है। ये महज नारा नहीं जीवन की सच्चाई है। पूज्य गुरूदेव ने जनकल्याणकारी भावनाओं के साथ आध्यात्मिक और वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर टिहरी बांध के खतरे से सरकार और जन सामान्य को चेताया था लेकिन सरकार ने सभी आध्यात्मिक और वैज्ञानिक तथ्यों व रिपोर्टों की अनदेखी करते हुए 21वीं सदी की मनुष्य की मूर्खता के इस स्मारक को बना डाला। जिसके घातक और विध्वंसक परिणाम भविष्य के गर्त में छिपे हुए हैं। प्रकृति ने आपदाओं के माध्यम से समय समय पर मनुष्य को चेताने का काम भी किया है और कर भी रही है लेकिन मनुष्य अपने तुच्छ और क्षणिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों का अपनी आवश्यकताओं से कहीं अधिक दोहन कर लिया है जो आज उसके जीवन की सबसे बड़ी समस्या बन गया है। इनके दोहन को बंद करने में ही मनुष्य की भलाई है। प्रकृति के प्रकोप को कम करने के लिए मनुष्य को तत्काल अपने स्वार्थों को त्याग कर संकल्प के साथ अधिक से अधिक पौधारोपण करते हुये जल जंगल और जमीन का संरक्षण करना होगा तभी धरती पर उसका अस्तित्व बना रह सकता है। सरकार के अच्छे प्रयासों में अधिकारियों के साथ साथ जनता को भी बिना किसी संकोच के साथ देना चाहिए। इससे लोकतांत्रिक व्यवस्था में निरन्तर सुधार लाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जा सकता है। नीति बनाने का काम सरकार का है लेकिन उनके क्रियान्वयन का दायित्व अधिकारियों पर होता है। सरकार द्वारा बनाई गयी नीति कितनी ही अच्छी और जन-कल्याणकारी क्यों न हो अगर उसका क्रियान्वयन समय पर सही ढंग से नहीं हो तो उसके लाभ से जनता वंचित रह जाती है। अधिकारियों को भी आत्म अवलोकन कर लेना चाहिए ताकि उनके किसी कार्य से समाज का अहित न होने पाये। वैसे सत्यता तो यही है कि अभी तक विकास के नाम पर जो खेल चल रहा है उसमें सबसे अधिक लाभ लेने वाला जो वर्ग है वो है नेता अधिकारी और ठेकेदार विकास की नीति वही अपनायी जाती रही है जिससे इस वर्ग विशेष को अधिक लाभ हो सके। हिमालय को बचाने के लिए जिन महापुरुषों पर्यावरणविदों सामाजिक लोगों ने समर्पण भाव से अपनी वर्षो की साधना तपस्या और अनुभवों से प्रकृति और हिमालय की पीड़ा को सरकार के पटल पर रखा था उस पर अमल करना तो दूर सरकार ने उस पर विचार करना भी गंवारा नही समझा। जिसके दुष्प्रभाव आज हमारे सामने आ रहे हैं। लेकिन फिर भी हम सोये हुए हैं। वर्तमान समय में हम सभी का पहला कर्तव्य है कि महापुरुषों की भावनाओं के अनुरूप उनकी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए अपनी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिये सदैव तत्पर रहें। समय रहते सरकार पर निर्भरता त्यागने में ही भलाई है। सच है कि आज यदि सरकार और जनता बिना किसी भेदभाव के एकजुट होकर अपने देश की हरियाली को बचाने का संकल्प लें और देश की हरित पूँजी को संग्रहित करने की दिशा में संकल्प के साथ काम करे तो हमारा राष्ट्र सम्पूर्ण विश्व में शिखर पर होगा। और सम्पूर्ण विश्व का मार्गदर्शन करने में भी सक्षम हो सकेगा। आज आवश्यकता मात्र एक उस संकल्प की है कि हमें वृक्षों के प्रति सम्मान का भाव रखते हुए उनके संरक्षण के प्रति निरन्तर संवेदनशील रहना है। केवल इसी संकल्प से मनुष्य स्वयं और अपने परिवार के साथ ही समाज और देश की रक्षा कर सकता है। महज इसी एक कार्य से हमारी संस्कृति की रक्षा होगी और देश की हरित पूँजी में बढ़ोतरी भी होगी हमारा अर्थतंत्र स्थायी रूप से मजबूत होगा इसके साथ ही राष्ट्र के स्थायी विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। विकास तो लम्बे समय तक चलने वाली एक सतत प्रक्रिया है। इसका स्थायी होना आवश्यक है। लेकिन थोड़े समय के लाभ के लिए प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों तथा अपनी संस्कृति को दांव पर लगाकर विकास का ढिंढोरा पीटना सही नही है। नैतिक और राजनैतिक दृष्टि से भी सही नही है। अब अगर वृक्ष

प्रकृति ने आपदाओं के माध्यम से समय समय पर मनुष्य को चेताने का काम भी किया है और कर भी रही है लेकिन मनुष्य अपने तुच्छ और क्षणिक स्वार्थों की पूर्ति के लिये प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों का अपनी आवश्यकताओं से कहीं अधिक दोहन कर लिया है जो आज उसके जीवन की सबसे बड़ी समस्या बन गया है। इनके दोहन को बंद करने में ही मनुष्य की भलाई है।

नहीं होंगे तो जीवन भी नही होगा। इसलिये अगर स्वयं को बचाना है तो वृक्षों को बचाना ही पड़ेगा। पर्यावरण संरक्षण की मुहिम किसी एक व्यक्ति के प्रयासों से सफल नही हो सकती है इसके लिए सामूहिक प्रयास बहुत ही आवश्यक हैं। प्रकृति का नियम है जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे। आज वृक्ष जीवन की पहली और अनिवार्य शर्त है। वृक्षों के बिना जीवन सम्भव नही है। मनुष्य ने वृक्षों से हरे-भरे जंगलों को उजाड़कर विकास के नाम पर विनाश कर दिया है। धरती की उपजाऊ मिट्टी को धूल बना डाला। नदियों की सरल स्वाभाविक निर्मल धारा को बांधकर बड़े-बड़े बांध बनाकर अपने शौर्य की गाथा से विनाश की लीला रच डाली और स्वयं अपने अस्तित्व को खतरे में डाल बैठा। मनुष्य साँस चौबीस घंटे लेता है और शुद्ध वायु की लालसा भी रखता है लेकिन मनुष्य उन वृक्षों के प्रति कभी कृतज्ञता ज्ञापित नहीं करता जो मनुष्य के उगले हुये जहर को पीकर साँस लेने के लिए शुद्ध प्राणवायु बिना किसी खर्च के चौबीस घंटे मुफ्त में देते रहते हैं। आज वृक्षों को बचाने की मुहिम के लिये समाज में कोई व्यापक चर्चा नहीं होती। पर्यावरण संरक्षण के प्रति उदासीनता और लापरवाही के साथ कर्तव्यों से विमुख होकर सब एक-दूसरे को देख रहे हैं। यह स्थिति अत्यन्त चिंतनीय है। अब केवल प्रकृति के साथ ही जीवन की कल्पना की जा सकती है। हमें अच्छी तरह से समझना और समझाना पड़ेगा अपनी आने वाली पीढ़ियों को कि अगर वृक्ष नहीं होंगे तो जीवन भी नही होगा। इसलिये अगर स्वयं को बचाना है तो वृक्षों को बचाना ही पड़ेगा। पर्यावरण संरक्षण की मुहिम किसी एक व्यक्ति के प्रयासों से सफल नही हो सकती है इसके लिए सामूहिक प्रयास बहुत ही आवश्यक हैं। आज पाश्चात्य संस्कृति और आधुनिकतावाद के आडम्बरों को त्याग कर अपनी सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के साथ जीवन जीने की पद्धति को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। शुद्ध और स्वस्थ जीवन केवल प्रकृति के सानिध्य में ही सम्भव है। लेकिन मनुष्य के सर्वांगीण विकास पर उसकी सोचने समझने की क्षमता को मैकाले की शिक्षा ने खोखला बना डाला है। शिक्षा की इस पद्धति को त्याग कर देश में आश्रम पद्धति की शिक्षा को बढ़ावा दिया जाना चाहिये। बहुत ही चिंता का विषय है कि मैकाले की शिक्षा ने मनुष्य के दिल और दिमाग पर ताला लगा कर उसके सोचने समझने की ताकत को नष्ट कर दिया है और सिर्फ टाई-बेल्ट वाली केवल नौकरशाही को ही बढ़ावा दिया है। देश की सभ्यता और संस्कृति को नष्ट करने वाली शिक्षा पद्धति को त्यागने से ही राष्ट्र का विकास सम्भव है। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन का अधिकार किसी को नही है। इस पर प्रभावी रोक लगाने के लिए सरकार को तत्काल प्रभावी नीति और कानून बनाने चाहिये जिससे हमारी हजारों वर्ष पुरानी वन संपदा और प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा हो सके। आज हमारी हजारों वर्ष पुरानी वन संपदा को जड़ी बूटियों के नाम पर नष्ट किया जा रहा है। विकास के नाम पर पहाड़ को नंगा करते हुये विनाश की लीला खुलकर रची जा रही है। शराब और शबाब के खेल ने देवी देवताओं के स्थान तक को दूषित कर दिया है। केदारनाथ जैसी भयानक त्रासदी को भुलाकर फिर से आध्यात्मिक और वैज्ञानिक सिद्धांतों की अनदेखी करते हुए फिर से पहाड़ के विकास की नयी गाथा को लिखा जा रहा है। मनुष्य की दूषित मानसिकता ने देवी देवताओं के स्थान को भी अपनी मौज मस्ती का साधन बना दिया है। आज हिमालय का अस्तित्व खतरे में है। प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को रोकने के लिये सबको मिल कर कार्य करना होगा। इसके साथ ही देश की सभ्यता और संस्कृति की रक्षा के लिये वैचारिक क्रांति के साथ सामूहिक प्रयासों की आवश्यकता है। मिलजुलकर बिना किसी भेदभाव के वृक्षों जल जंगल और जमीन की रक्षा करनी होगी ताकि जीवन सुरक्षित रह सके। पौधारोपण समस्त विश्व और मानव जाति की सच्ची सेवा का पवित्र साधन है आईये हम सब मिलकर अधिक से अधिक पौधारोपण करके अपने और अपने राष्ट्र के भविष्य को सुखद, समृद्ध और खुशहाल बनायें तथा समस्त विश्व की शांति और खुशहाली में अपना योगदान दें। अगर धरा नहीं रहेगी तो सब धरा रह जायेगा यह बात सभी को ध्यान में रखनी होगी। मिट्टी पानी और बयार के बिना सब धरा रह जायेगा। इसलिए बिना किसी भेदभाव के अधिक से अधिक पौधारोपण करके कुदरत की इस अनमोल विरासत को संभालकर रखें।

सम्पूर्ण क्रांति : सरकारी शक्ति से नहीं, जनशक्ति से

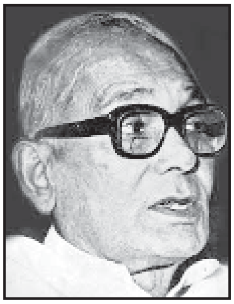

जय प्रकाश नारायण

स्वराज्य के बाद गांधीजी ने कहा था कि ''हमारा काम खत्म नहीं हुआ, बल्कि शुरू हुआ है।'' और इस काम को पूरा करने के लिए सबा सौ वर्ष की आयु तक वो जिन्दा रहें, ऐसी उनकी ख्वाहिश थी। परन्तु देश का यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य रहा कि स्वराज्य-प्राप्ति के कुछ ही महीने बाद गांधीजी की हत्या हो गयी और उन्हें यह अवसर नहीं मिला कि राष्ट्रीय क्रान्ति के बाद सामाजिक क्रान्ति किस प्रकार हो सकेगी, इस प्रश्न का उत्तर वे पूरे देश के सामने रख सकते। इस क्रान्ति के लिए लोक-शक्ति का जागरण गांधी का सपना था और यही उनकी साधना भी थी । सत्ता को परिवर्तन का माध्यम न मानकर सेवा, सहकार और संघर्ष को उन्होंने सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाया था और यही कारण था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गांधी ने कोई पद स्वीकार नहीं किया, बल्कि कांग्रेस को विघटित कर जन- सागर में कूद पड़ने की सलाह दी थी। अत: सम्पूर्ण क्रान्ति का यह आन्दोलन गांधीजी की मृत्यु के साथ अधूरी रह गयी क्रान्ति का ही अगला चरण है, ऐसा कह सकते हैं। बापू के स्वातंत्रय संग्राम का मैं एक सिपाही रहा हूँ और उन्हींसे यह सीखा हूँ कि क्रान्ति सरकारी शक्ति से नहीं, जन-शक्ति से होगी ।

शासन के द्वारा समाज में क्रान्ति, और वह भी सम्पूर्ण क्रान्ति दुनिया में आज तक नहीं हुई है। क्रान्ति तो जनता के द्वारा ही होती है। अगर उस समय शासन क्रान्ति के अनुकूल हो तो. बल मिलता है, और जनता के लिए काम आसान होता है । समाज-परिवर्तन का मुख्य साधन राज्यसत्ता हो नहीं सकती, गांधीजी मानते थे। इसके पीछे क्रान्ति की प्रेरक शक्ति के विषय में उनका गहरा चिन्तन था। उनका मानना था कि सामाजिक चारित्रय मानवीय रखना हो तो समता और बन्धुत्व को बुनियादी तत्त्व के रूप में समाज को स्वीकार करना होगा, और समाज में इसकी स्वीकृति लोक-शिक्षण, और जब जरूरी हो तो सत्याग्रह से प्राप्त करनी होगी। इसलिए गांधीजी के मन में क्रान्ति के लिए राज्यसत्ता हाथ में लेने की बात नहीं थी। वे क्रान्ति के साथ-साथ एक ऐसी समाज-रचना खड़ी करना चाहते थे, जो सबसे

स्वराज्य-प्राप्ति के कुछ ही महीने बाद गांधीजी की हत्या हो गयी और उन्हें यह अवसर नहीं मिला कि राष्ट्रीय क्रान्ति के बाद सामाजिक क्रान्ति किस प्रकार हो सकेगी, इस प्रश्न का उत्तर वे पूरे देश के सामने रख सकते। इस क्रान्ति के लिए लोक-शक्ति का जागरण गांधी का सपना था और यही उनकी साधना भी थी। सत्ता को परिवर्तन का माध्यम न मानकर सेवा, सहकार और संघर्ष को उन्होंने सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाया था...।

कमजोर आदमी के हित में काम करने के लिए राज्य - सत्ता को मजबूर कर सके। प्रभावशाली जनशक्ति और उससे ऐसी संस्थाएँ खड़ी करना चाहते थे, जिनका प्रभाव राज्य पर, सत्ता का सामाजिक कल्याण में सार्थक ढंग से उपयोग के लिए दबाव पैदा करे। उनका वर्चस्व और प्रभाव ही सत्ता के सदुपयोग का आश्वासन बना रहे

अब तक क्रान्ति की जो पद्धतियाँ रही हैं, उनसे गांधीजी की यह पद्धति स्पष्ट रूप से भिन्न है। इसका कारण यह है कि सर्वोदय की दृष्टि से राज्य स्वभावत: एक बलप्रयोग का साधन है। इसीलिए तो राज्य अधिकतर संगठित गुटों की सत्ता लिप्सा की तृप्ति का एक साधन बना रहे, इसीकी सम्भावना अधिक रहती है, जब कि हर व्यक्ति के कल्याण की चिन्ता करने वाली समाज-रचना के लिए राज्य सत्ता एक साधन बने, इसकी संभावना उतनी नहीं रहती। राज्य-सत्ता चाहे जिसके हाथ में हो, वह एक नीति-अनीति से निरपेक्ष शक्ति है, इसीलिए उसके द्वारा यदि नैतिक उद्देश्य सिद्ध करना चाहें तो हमें सर्वप्रथम समाज में नैतिक शक्तियाँ खड़ी करनी होंगी।

अत: अगर कोई यह समझने लगे कि सम्पूर्ण क्रान्ति और ऐसे अन्य दूसरे जो भी काम करने होंगे, उन्हें सरकार कर देगी तो यह बिलकुल गलत होगा । सम्पूर्ण क्रान्ति की कल्पना में तो यह है कि सारे समाज में परिवर्तन हो, समाज के हर अंग में हो, व्यक्ति के जीवन में हो, सामाजिक संस्थाओं के रूप-रंग, चाल-चलन में हो, उनके संघटन और कार्य-पद्धति में हो, इन सबमें परिवर्तन हो। इसके लिए जरूरत है ऐसे लोगों की, जो जनता के बीच नि:स्वार्थ भाव से काम करें, जनता को जागृत करें। शासन भी जितना सहायक हो सके, उतना हो। लेकिन यह बात मत भूलिये कि यह काम कार्यकर्ताओं का है, क्रान्ति में विश्वास रखनेवाले हर युवक का है, जनता का है। जन क्रान्ति जनता के ही सहयोग से और उसके हाथों होती है, इसलिए ऐसी झूठी आशा आपके दिल नें पैदा न हो कि आपको कुछ नहीं करना है, यह सब सरकार का काम है। समाज परिवर्तन का काम तो समाज में ही हो सकता है। मुख्य उसका जो साधन होगा वह होगा लोगों को समझाना। समझाकर उनको बदला जाय। जहाँ-जहाँ विरोध खड़ा होता है, निहित स्वार्थों की तरफ से, वहाँ वह एक सत्याग्रह का, संघर्ष का रूप ले सकता है। कानून बना देने से कोई समाज नहीं बदलता । सम्पूर्ण क्रान्ति सरकारी शक्ति से नहीं, जन-शक्ति से ही हो सकती है।

नौकरशाही पूंजीवाद का जन्म

गांधीजी ने जो कहा था कि हमारा असली काम स्वतन्त्रता के बाद शुरू हुआ - वास्तव में वह जन-शक्ति के जागरण और संगठन का काम ही था। इसके लिए उन्होंने सात लाख गाँवों में सात लाख नौजवानों को लोकसेवक के रूप में प्रस्थापित करने की बात कही थी। कांग्रेस को लोकसेवक संघ के रूप में देहातों में जाने का सुझाव दिया था।

परन्तु गांधीजी की इस बात की तरफ बिलकुल ध्यान नहीं दिया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि जनशक्ति निरंतर कुंठित होती गयी। अन्त में स्थिति यहाँ तक पहुँची कि लोकतंत्र में 'तंत्र' ही दानवाकार दिखायी देने लगा, 'लोक' कहीं लुप्त हो गया । इसीलिए आज हम देखते हैं कि देश की आजादी के इतने वर्ष बीत गये, पर हमारे समाज के आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक ढाँचे में कोई वास्तविक परिवर्तन नहीं हुआ। कानूनन जमींदारी प्रथा उठा दी गयी है, भूमि-सुधार के कानून भी पारित किये जा चुके हैं, और अस्पृश्यता पर कानूनी रोक लग गयी है। ऐसे ही अन्य कुछ काम भी हुए हैं। परन्तु देश के अधिकांश भागों में गाँव पर अब भी ऊँची जातियों का, बड़े और मझोले भूमिपतियों का कब्जा है। भारत के अधिकांश राज्यों के अधिकतर गाँवों में छोटे तथा मझोले भूमिपतियों, भूमिहीनों, पिछड़े वर्गों तथा हरिजनों का ही बहुमत है । फिर भी उनकी स्थिति दयनीय है। हरिजनों को आज भी जिन्दा जला दिया जाता है। हरिजनों के अलावा आदिवासी ही सबसे पिछड़ा हुआ वर्ग है और इन आदिवासियों को वे महाजन (जिनमें बहुत सारे भूमिवान् और दुकानदार शामिल हैं, जो अपने-आपमें संभवत: छोटे ही होते हैं) निर्दयतापूर्वक ठगते हैं और उनका शोषण करते हैं। बिहार में तो ये आदिवासी मैदानी इलाकों के लोगों को 'डिक्कू' कहते हैं ।

कुछ उद्योगों, बैंकों तथा जीवन बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण हुआ है। रेलवे का तो राष्ट्रीयकरण बहुत पहले हो चुका था। सार्वजनिक क्षेत्र में कुछ नये और बड़े उद्योगों की स्थापना हुई है। परन्तु इन सबकी निष्पत्ति क्या है ? यह सब मिलकर राजकीय पूँजीवाद को जन्म देते हैं तथा अकुशलता, बरबादी और भ्रष्टाचार में वृद्धि करते हैं। राजकीय पूँजीवाद का अर्थ है राज्य की सत्ता, मुख्यत: राजकीय नौकरशाही की सत्ता में, या जिसे गालब्रेथ ने सार्वजनिक नौकरशाही की संज्ञा दी है, वृद्धि होना। श्रमिक वर्ग का, जनता का, या यों कहिये, आम लोगों का कोई स्थान इस ढाँचे में नहीं है, सिवा इसके कि वे मजदूर या उपभोक्ता मात्र हैं। उसमें न तो बहुचर्चित आर्थिक लोकतन्त्र और न औद्योगिक लोकतन्त्र ही है। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं समाजवाद का विरोधी हूँ। चूँकि समाजवाद में मुझे गहरी दिलचस्पी है, इसलिए मैं इन सब बातों की ओर संकेत कर रहा हूँ। अफसोस यह है कि हमारे समाजवादी बन्धु राष्ट्रीयकरण को ही बहुत दूर तक समाजवाद का पर्याय मान लेते हैं।

शिक्षा-व्यवस्था बुनियादी रूप से वही रह गयी है, जो अंग्रेजी शासन में थी, याने शिखर पर पहुँचानेवाले सोपानतुल्य वर्ग-शिक्षा का रूप उसका रह गया है, बावजूद इसके कि उसके सुधार के लिए कई कमेटियाँ और आयोग बनाये गये। यहाँ मैं यह स्पष्ट हूँ कि आजादी के बाद इतने वर्षों में भी समाज का ढाँचा किस प्रकार अपरिवर्तित रह गया है-रस्म-रिवाज, तौर-तरीके, विश्वास, अंध-विश्वास - ये सब आम लोगों के लिए बहुत कुछ वही रह गये हैं; उच्च वर्गों के लिए भी अधिकांशत: सतही परिवर्तन हुए हैं।

यदि हम सामाजिक एवं आर्थिक विकास को लें तो बड़ी भयानक तस्वीर सामने आयेगी। जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। गरीबी भी बढ़ रही है, 40 प्रतिशत से भी अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं। भोजन-वस्त्र के अलावा पेय-जल, मनुष्य के रहने लायक मकान, चिकित्सा-सेवा आदि ऐसी निम्नतम आवश्यकताएँ भी उपलब्ध नहीं हैं।

सहनशीलताः भारत और महात्मा गांधी

प्रोफेसर डॉ० रवीन्द्र कुमार

वैज्ञानिकों का एक वर्ग यह मानता है कि पृथ्वी पर मनुष्य का उद्भव लगभग दस लाख वर्ष पहले हुआ था। वैज्ञानिकों के इस विशेष वर्ग ने मनुष्य के विकास की प्रक्रिया को अनेक युगों में विभाजित किया है, जैसे कि आदिम युग, पाषाण युग, कांस्य युग, लौह युग और आधुनिक युग आदि। पुरातत्वविदों के एक वर्ग ने भी नृवैज्ञानिकों से जुड़े इन तर्कों को स्वीकार किया है, विशेष रूप से उनके मानव-विकास के युगों के विभाजन को। निस्सन्देह, पुरातत्वविदों के इस वर्ग के पास इस सम्बन्ध में अपने तर्क भी हैं और उनके साक्ष्यों का आधार समय-समय पर किए गए उत्खनन कार्य हैं। नृवैज्ञानिको का तर्क, जिसमें वे दावा करते हैं कि पृथ्वी पर मनुष्य का उद्भव लगभग दस लाख वर्ष पहले हुआ था, कई लोगों को स्वीकार्य नहीं हो सकता है। साथ ही, पुरातत्वविदों द्वारा नृवैज्ञानिकों के समर्थन में दिए गए तर्क, विशेष रूप से जो विभिन्न युगों में मानव-विकास क्रम, तदनुसार विभाजन से सम्बन्धित हैं, अनेक जन को स्वीकार्य नहीं हो सकते हैं। हम यह भी पाते हैं कि नृवैज्ञानिकों और पुरातत्वविदों के कुछ वर्ग अपने पृथक दृष्टिकोण भी रखते हैं। फिर भी नृवैज्ञानिकों एवं पुरातत्वविदों के दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण तथा विचारणीय है।

साथ ही, नृवैज्ञानिकों के एक वर्ग ने यह तर्क भी दिया है कि पृथ्वी पर सर्वप्रथम मानव-उद्भव का प्रमाण भारतीय उपमहाद्वीप में है; अथवा, आज का भारत ही है; या वह एक द्वीप था, जो भारत का भाग था और हिन्द महासागर में डूब गया है। वैज्ञानिकों के उपरोक्त तर्क में कितनी वास्तविकता है, इस पर मैं कोई अन्तिम टिप्पणी नहीं कर सकता, क्योंकि मैं न तो मानव विषयों से जुड़ा वैज्ञानिक हूँ और न ही पुरातत्वविद् हूँ। तो भी, प्राचीन भारतीय इतिहास के विभिन्न विश्लेषणों का अध्ययन करने पर, मैं निश्चित रूप से इस विचार को स्वीकार कर सकता हूँ कि प्राचीन-सुदूर काल से ही भारतीय भू-भाग में मनुष्य का निवास रहा है। प्राचीनकाल से ही भारत में एक अनुकरणीय, विकसित और सामंजस्यपूर्ण सभ्यता रही है। इसीलिए, मैं विद्वानों, शोधकर्ताओं एवं विषय-विशेषज्ञों का आह्वान करता हूँ कि वे मानव-विषयों से जुड़े वैज्ञानिकों और पुरातत्वविदों के तर्कों का पुनर्विश्लेषण करने के लिए आगे आएँ। भारत, भारतीय उपमहाद्वीप या उस

नृवैज्ञानिको का तर्क, जिसमें वे दावा करते हैं कि पृथ्वी पर मनुष्य का उद्भव लगभग दस लाख वर्ष पहले हुआ था, कई लोगों को स्वीकार्य नहीं हो सकता है। साथ ही, पुरातत्वविदों द्वारा नृवैज्ञानिकों के समर्थन में दिए गए तर्क, विशेष रूप से जो विभिन्न युगों में मानव-विकास क्रम, तदनुसार विभाजन से सम्बन्धित हैं, अनेक जन को स्वीकार्य नहीं हो सकते हैं।

द्वीप (जो भारत का भाग था और कालान्तर में हिन्द महासागर में समा गया), जहाँ मनुष्य का सर्वप्रथम उद्‌भव हुआ, से सम्बन्धित प्रस्तुत किए गए तर्कों पर और शोध करें।

समय-समय पर हुए उत्खनन कार्यों से ऐसे तथ्य सामने आए हैं, जो भारत-भूमि पर हजारों वर्षों से मनुष्य तथा हजारों ही वर्ष प्राचीन भारतीय सभ्यता की उपस्थिति को सिद्ध करते हैं। ये उत्खनन कार्य निचले स्तर तक नहीं किए गए हैं; लेकिन वहाँ से प्राप्त वस्तुओं से प्राचीन भारत और उस समय की अन्य संस्कृतियों की तुलना में समृद्ध भारतीय जीवन-शैली के सम्बन्ध में रोचक सूचनाएँ मिली हैं। इसीलिए, पुरातत्वविदों का और अधिक गहराई तक उत्खनन कार्य किए जाने का आह्वान है, ताकि भारत में मनुष्य के वास्तविक इतिहास को जाना जा सके। तभी मानव-विषयों से जुड़े वैज्ञानिक भारत की प्राचीनतम सभ्यता के बारे में भी ठोस निर्णय पर पहुँच सकते हैं।

यद्यपि भारतीय सभ्यता से सम्बन्धित अनेक रहस्यों पर से पर्दा उठना अभी शेष है; विशेषकर मनुष्य के उद्‌भव और विकास-प्रक्रिया के सम्बन्ध में, फिर भी भारत में प्राचीनकाल से ही मानव जाति का निवास रहा है। भारत में अनेक विशेषताओं से परिपूर्ण एक समृद्ध सभ्यता और संस्कृति रही है; यह उपलब्ध इतिहास से ही स्पष्ट है। द्रविड़ (दक्षिण)-आर्य (उत्तर) संगम के समय भारत की संस्कृति को एक अद्‌भुत और अनुकरणीय आयाम प्राप्त हुआ। उस संगम के परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति अपनी मौलिकता को बनाए रखते हुए सामंजस्यपूर्ण दिखाई दी; यह एक समग्र तथा समन्वयकारी, व अनेकता में एकता स्थापित करने वाली संस्कृति बन गई।

सद्‌भाव और समन्वयकारी विशेषताओं से परिपूर्ण भारतीय संस्कृति भारत की पहचान बन गई; इसने पूरे विश्व का ध्यान आकर्षित किया। समय-समय पर इसके समक्ष अनेक उतार-चढ़ाव आए, लेकिन भारतीय संस्कृति बहुत बड़ी सीमा तक अक्षुण्ण रही। आज सामान्य भारतीय भारत की सामंजस्यपूर्ण और मिश्रित संस्कृति के अनुयाई हैं, वे इसके पोषक और रक्षक हैं। यह मेरा दृढ़ विश्वास है। सौहार्द और समन्वयकारिता, इन दो अनूठी और असाधारण विशेषताओं ने, जो भारतीय संस्कृति की बहुआयामी संरचना में प्रकट हुई एवं जो आजतक भी इसे विश्वभर में एक पहचान देती हैं, विश्व की अनेक संस्कृतियों की विशेषताओं के लिए भी भारत-भूमि पर द्वार खोले; यह मेरा दृढ़ विश्वास है। चाहे चौथी शताब्दी ईसा पूर्व ग्रीक-संस्कृति और उसके प्रभाव से जुड़ा विषय हो; प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व शक-संस्कृति से सम्पर्क हो, या इसी प्रकार कुषाणों की विशिष्टताओं के प्रवेश की बात हो, ये दोनों ही विशेषताएँ, इसके लिए उत्तरदायी रही हैं। इसके अतिरिक्त, ये दोनों विशेषताएँ हूण, हेफ्ताल, अरब, मंगोल तथा यूरोपीय संस्कृतियों की विशिष्टताओं के प्रवेश और भारतीय संस्कृति के साथ इनके सम्मिलन के लिए भी, न्यूनाधिक उत्तरदायी रही हैं। ये सभी विशेषताएँ आज भारतीय संस्कृति का अभिन्न भाग हैं। किसी न किसी रूप में भारतीयों के जीवन का अभिन्न अंग हैं।

सामंजस्य और विभिन्नताओं में एकता स्थापित करने वाली संस्कृति, जिसने भारत को एक विशिष्ट पहचान प्रदान की है और जो भारतीय मार्ग के निर्माण में समय और परिस्थितियों की मांग के अनुसार भारतीयों के संस्कारों के विस्तार और विकास के लिए कार्य करती है, हिन्दू दृष्टिकोण से अति प्रभावित है। दूसरे शब्दों में, भारतीय संस्कृति में हिन्दू दृष्टिकोण का अपना विशेष और महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दू-विचार, यदि स्पष्ट शब्दों में कहें, तो वैदिक दर्शन पर आधारित है; दूसरे शब्दों में, वेदों द्वारा निर्देशित जीवन शैली है। ये विचार भारतीयों के जीवन में व्यापक रूप से और पहली बार लगभग 2000 ईसा पूर्व, या अब से 4000 वर्ष पूर्व द्रविड़ों (दक्षिणवासियों) और आर्यों (उत्तरवासियों) के संगम के समय आए। सार्वभौमिक स्वीकृति और सभी का कल्याण वैदिक-हिन्दू विचारों के केन्द्र में हैं।

निस्सन्देह, अतिप्राचीनकाल में भारत में एक विकसित संस्कृति थी; अहिंसा, योजनाबद्धता, विकासोन्मुखता और अन्य विशेषताएँ भारतीयों के संस्कारों में विद्यमान थीं, जैसा कि सिन्धु घाटी सभ्यता के समय के विभिन्न नगरों की खुदाई के समय प्राप्त विभिन्न वस्तुओं से स्पष्ट है। यद्यपि, द्रविड़ों (दक्षिणवासियों) और

आर्यों (उत्तरवासियों) के संगम से पहले भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले सभी भारतीयों के सामाजिक और धार्मिक जीवन में कोई एकरूपता नहीं थी; दूसरे शब्दों में, उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक यह स्थिति एक जैसी नहीं थी। यह एकरूपता, निश्चित रूप से, द्रविड़-आर्य संगम के बाद अस्तित्व में आई। वेदों, विशेष रूप से ऋग्वेद में मार्गदर्शक विचारों ने, जिन्हें हिन्दू दर्शन के रूप में जाना जाता है, इस सन्दर्भ में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त में अग्नि के स्रोत के रूप में ईश्वर की आराधना, मानव-एकता और सबके कल्याण के उद्देश्य से, उनके आशीर्वाद की कामना के लिए की गई है, जो निश्चित रूप से सार्वभौमिक स्वीकृति को केन्द्र बिन्दु बनाती है। इसी सूक्त में हिंसा की बुराई से पृथकता की उत्कट इच्छा, या दूसरे शब्दों में अहिंसा की कामना, उन दो महान और अनुकरणीय मूल्यों की सूचक है, जो हिन्दू अथवा वैदिक दृष्टिकोण से दैनिक मानवीय व्यवहारों को परिभाषित करते हैं। इसके अतिरिक्त, वे दो मूल्य आज भी उनकी पहचान के संकेत हैं और भविष्य में भी रहेंगे। वे दो महान मूल्य हैं: सहिष्णुता और सहनशीलता।

प्रेम और सहयोग-भावना से परिपूर्ण सहिष्णुता वह मानवीय व्यवहार है, जिसे मानव-मानव के मध्य के सम्बन्धों तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। इसकी परिधि में सभी प्राणी आते हैं। सहिष्णुता मनुष्य में नैतिकता का विकास करती है और उसे इसका उच्चतम स्तर भी प्रदान करती है। इसके माध्यम से मनुष्य दूसरों के दुख-दर्द पर ध्यान देता है और, इस प्रकार, अन्ततः अहिंसा को विस्तार देता है। हिन्दू-दृष्टिकोण के यदि दो श्रेष्ठ स्तम्भ हैं, तो उनमें से पहला निश्चित रूप से सहिष्णुता है। सहिष्णुता के बिना कोई भी व्यक्ति हिन्दू होने का दावा नहीं कर सकता। यदि कोई ऐसा करता है, तो मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि वह झूठा है।

सहनशीलता पूर्णतः धैर्य की परिधि में आती है, यद्यपि सहिष्णुता की भाँति इसमें सहयोग-भावना के साथ ही पर-दृष्टिकोण को स्वीकार करने का मूल सिद्धान्त भी व्याप्त है। दूसरे शब्दों में, अन्यों के विचारों को स्वीकार करना, उनके विचारों का सम्मान करना एवं व्यवहारों को भी मान्यता देना, यदि वे स्वयं के विचारों-व्यवहारों के आड़े नहीं आते। सहनशीलता हिन्दू-दृष्टिकोण का दूसरा श्रेष्ठ स्तम्भ है। इसके अभाव में भी कोई सच्चा हिन्दू होने का दावा नहीं कर सकता।

वह हिन्दू दृष्टिकोण की सहनशीलता ही थी कि जिसने समय-समय पर उन लोगों को प्राश्रय दिया है, जो अपने ही देशों में उत्पीड़ित थे और भारत में शरण लेना चाहते थे। सैकड़ों वर्ष पूर्व रोमन अत्याचारों से पीड़ित यहूदी भारत की धरती पर पहुँचे और उन्हें यहाँ आश्रय मिला। स्पीतमा जरथुस्त्र के अनुयाई पारसियों ने भी अपने ही देश ईरान में अपनी स्वतंत्रता छिन जाने पर भारत में शरण पाई। ऐसे शरणार्थियों की एक लम्बी सूची है, जिसमें हम विश्व के विभिन्न भागों से आए अनेक मानव समूहों के नाम देख सकते हैं।

मुझे गर्व है कि हिन्दू दृष्टिकोण के मूलभूत सिद्धान्तों में से एक सहनशीलता की सर्वोच्चता के कारण भारत में न केवल द्रविड़ (दक्षिण)-आर्यों (उत्तर) का संगम स्थापित है, अपितु शक, कुषाण, हूण, यूनानी, मंगोल, तातार, तुर्क, अरब और यूरोपीय लोगों का रक्त भी इसकी धरती पर है। वह रक्त अब भारत की सामंजस्य को समर्पित और विभिन्नताओं में एकता-स्थापित करने वाली संस्कृति की नसों में बहता है। मुझे इस बात पर भी गर्व है कि भारत विश्व के लगभग सभी प्रमुख धर्म समुदायों के अनुयायियों का घर है। वे भारतीय धरती पर सुरक्षित अनुभव करते हैं। भारत के आमजन के सहनशील स्वभाव के कारण ही वे यहाँ अपने अस्तित्व को लेकर आश्वस्त हैं।

महात्मा गांधी स्वयं एक महान भारतीय थे; वे एक उत्कृष्ट हिन्दू थे। भारतीय दृष्टिकोण, जिसमें सार्वभौमिक स्वीकृति जीवन का मूल है और जो अहिंसा को दैनिक व्यवहारों में सर्वोच्च मूल्य स्वीकार करता है; जिसमें सहिष्णुता का हिन्दू पक्ष प्रमुख है, महात्मा गांधी को न केवल सिद्धान्त रूप में प्रिय था, अपितु उन्होंने इसे जीवनभर अपने व्यक्तिगत व्यवहारों में भी लागू किया।

अतिविशेष रूप से हिन्दू दृष्टिकोण में निहित सहनशीलता, जिसने उन सभी सामाजिक और सांस्कृतिक

विशिष्टताओं को स्वीकार किया जो भारत-भूमि पर पहुँचीं और, साथ ही, सामान्य रूप से सभी के लिए आत्म-अभिव्यक्ति और स्वतंत्रता के द्वार खोले व जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सदैव ही प्रगति एवं विकास के लिए नए आयाम जोड़े, महात्मा गांधी के लिए आकर्षण का केन्द्र बनी। सहनशीलता, भारत और अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए गांधीजी के विचारों और कार्यों हेतु प्रेरणास्रोत बन गई। हिन्दू दर्शन में सहनशीलता वाले पक्ष के सम्बन्ध में उन्होंने यहाँ तक कहा कि उन्होंने हिन्दू धर्म को, सभी ज्ञात धर्मों में सबसे अधिक सहनशील (सहिष्णु) पाया है। इसमें हठधर्मिता का अभाव है, जिससे इसके अनुयायियों को आत्माभिव्यक्ति के लिए अधिकाधिक अवसर प्राप्त होते हैं।

यही नहीं, सहनशीलता के बल पर विकसित हिन्दू-स्वीकृति की, जो अन्यों को समान सम्मान देती है, तथा जो मनुष्य से दूसरे की श्रद्धा-विश्वास का सम्मान करने का आह्वान भी करती है, महात्मा गांधी ने बहुत सराहना की थी। इस सन्दर्भ में उन्होंने कहा था कि एक अतिविशिष्ट और खुला धर्म होने के कारण हिन्दू धर्म न केवल अपने अनुयायियों को अन्य सभी धर्मों का सम्मान करने में सक्षम बनाता है, अपितु यह उन्हें अन्य धर्मों में जो कुछ भी अच्छा हो, उसकी प्रशंसा करने व उसे आत्मसात करने की प्रेरणा भी देता है।

भारतीय मार्ग विश्व के विभिन्न भागों में विकसित और स्थापित विचारों को निम्न नहीं मानता; हिन्दू दृष्टिकोण अन्यों के विश्वासों, मान्यताओं और जीवन के ढंग को समान स्तर प्रदान करता है। जैसा कि मैंने पहले कहा है, यह उन्हें समृद्ध होने का अवसर देता है और उनके साथ समन्वय, सहयोग और सामंजस्य का आह्वान करता है। इतना ही नहीं, यह अपनी छत्रछाया में उनका पोषण करता है और उन्हें सुरक्षा-संरक्षण प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, यह उन्हें अपनी परिधि को व्यापक बनाने और इसकी एकता को सुदृढ़ता देने के लिए आमंत्रित भी करता है।

भारतीय मार्ग सहनशीलता-केन्द्रित है; अन्यों की विशिष्टताओं को स्वीकार करना तथा उन्हें सम्मान देना इसका मूल सिद्धान्त है। इसीलिए, एक महान भारतीय होने के नाते महात्मा गांधी अहिंसा को, जो एक शाश्वत, स्वाभाविक तथा प्रथम मानवीय मूल्य है, न्यूनाधिक, संसार के सभी विद्यमान धर्म सम्प्रदायों में देख सकते थे; वे इसे सभी धर्म-समुदायों की प्रमुख शिक्षाओं में एवं सभी प्रवर्तकों की दिनचर्या में भी अनुभव कर सकते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने यंग इण्डिया के 20 अक्टूबर, 1927 के अंक में स्पष्ट रूप से कहा था, ''अहिंसा सभी धर्मों में... है।''

व्यवहार में अहिंसा की मात्रा विभिन्न धर्म-समुदायों में कम या अधिक हो सकती है। लेकिन, अहिंसा एक शाश्वत मूल्य है; यह स्वाभाविक है। इसलिए, कोई भी धर्म सम्प्रदाय इससे उदासीन नहीं हो सकता। कोई भी सच्चा धर्मगुरु, अवतार, ईश्वर का दूत या प्रवर्तक (संस्थापक) अपने धर्म सम्प्रदाय को इससे पृथक नहीं कर सकता। न केवल बौद्ध शिक्षाएँ और गौतम बुद्ध, जैन दर्शन और तीर्थंकर, अपितु ईसाई धर्म और ईसा मसीह आदि भी निरन्तर अहिंसा मूल्य का प्रसार करते रहे हैं। इसी कारण से वे अपने-अपने समय में महान शान्तिदूत रहे हैं।

महात्मा गांधी ने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम, योगेश्वर श्रीकृष्ण एवं स्पीतमा जरथुस्त्र की ही भाँति ईसा मसीह को भी दिव्य और पवित्र माना। उन्होंने उनकी शिक्षाओं को शान्ति और समृद्धि के मार्ग के लिए सर्वव्यापी और महत्त्वपूर्ण घोषित किया; उन्हें कल्याणकारी भी घोषित किया। महान धर्म-शिक्षक, अवतार या ईश्वर-दूत के रूप में, चाहे वे पृथ्वी के किसी भी भाग में प्रकट/उत्पन्न हुए हों, उनके सन्देश एवं शिक्षाएँ सदैव पूरी मानवता के कल्याण के लिए रही हैं; इसलिए, उनकी शिक्षाएँ समय और परिस्थितियों की मांग के अनुसार अपने परिमार्जन के साथ प्रत्येक जन के लिए कल्याणकारी हो सकती हैं। साथ ही, वे मानव-एकता और सार्वभौमिक स्वीकृति का आधार बन सकती हैं। जैसा कि महात्मा गांधी का मानना था, भारतीय मार्ग को, जो सद्भाव और समन्वय पर आधारित है, सुदृढ़ कर सकती हैं, जैसा कि उन्होंने अतीत में किया है। भारतीय मार्ग के एक उत्कृष्ट अनुयाई और व्याख्याकार होने के रूप में महात्मा गांधी ने इस वास्तविकता को स्वीकार किया। इस सम्बन्ध में गौतम बुद्ध के बारे में 24 नवम्बर, 1927 को यंग इण्डिया के अंक में प्रकाशित उनके

एक वक्तव्य की पंक्ति उद्धृत की जा सकती है, जिसमें उन्होंने कहा, ''उन्होंने इसका आधार व्यापक किया; इसे एक नया जीवन और नया आयाम दिया।''

चाहे ईसाई धर्म सम्प्रदाय की सेवा-भावना हो, सिख धर्म सम्प्रदाय की वीरता रूपी महान विशिष्टता हो, या इस्लाम की भाईचारे (भले ही अपने समुदाय तक सीमित) और एकेश्वर अवधारणा में आस्था हो, ये सभी विशेषताएँ महात्मा गांधी के लिए आकर्षण का विषय रहीं। इनके माध्यम से उन्होंने भारतीय मार्ग को सुदृढ़ और व्यापक बनाने की वास्तविकता को ईमानदारी से स्वीकार किया। यंग इण्डिया में 21 मार्च, 1927 के अपने स्तम्भ में उन्होंने भारत की राष्ट्रीय संस्कृति में इस्लाम के योगदान के बारे में विशेष रूप से लिखा कि भारत की राष्ट्रीय संस्कृति में इस्लाम का विशिष्ट योगदान एकेश्वरवाद में इसकी शुद्ध आस्था और नाममात्र के लिए भी इसकी परिधि में आने वाले लोगों के लिए भाईचारे की सत्यता का अनुप्रयोग है। मैं इन्हें दो विशिष्ट योगदान कहता हूँ, क्योंकि हिन्दू धर्म में भाईचारे की भावना को बहुत अधिक दार्शनिक बना दिया गया है।

महात्मा गांधी का संकेत स्पष्ट था। वे चाहते थे कि हिन्दू दृष्टिकोण, जो भारतीय जीवन पद्धति का मूल आधार है; सिद्धान्त और व्यवहार में सहिष्णुता का प्रतीक है, अति-दार्शनिक भावना की परिधि से बाहर आए, ताकि वह सार्वभौमिक स्वीकृति के लिए अनुकूल बन सके, जो भारत की पहचान है तथा जिसके लिए भारतीयों को विश्वभर में जाना जाता है। यदि इस उद्देश्य के लिए इस्लाम से कुछ सीखा जाए, तो क्या बुरा है? यह निश्चित रूप से कल्याणकारी है।

इसी प्रकार, यदि भारतीय अपनी मौलिकता को बनाए रखते हुए सामाजिक, धार्मिक और जीवन के अन्य क्षेत्रों में समय और परिस्थितियों की मांग के अनुसार भारतीय जीवन पद्धति की व्यापकता और सुदृढ़ता के लिए अन्यों की विशिष्टताओं को, न्यूनाधिक, स्वीकार करते हैं, तो इसमें क्या बुराई है? यह भारत की शताब्दियों पुरानी परम्परा है। यह भारत की सामंजस्यपूर्ण और विभिन्नताओं में एकता स्थापित करने वाली संस्कृति का मूल आधार है। महात्मा गांधी ने इसे एक नया आयाम दिया और इस प्रकार वे भारत का गौरव बन गए।

परिवर्तन अपरिहार्य है; दूसरे शब्दों में, यह सृष्टि का शाश्वत नियम है। प्रत्येक उत्पत्ति और सांसारिक वस्तु परिवर्तन नियम की परिधि में है। लेकिन, परिवर्तन किस प्रकार मानव प्रगति के अनुकूल और सभी जीवों के लिए कल्याणकारी हो, इसे सुनिश्चित करना स्वयं मनुष्य का कर्त्तव्य और दायित्व है। मनुष्य, उचित दिशा में ऐसा करने में सक्षम है। चाहे वह प्राचीनकाल हो या मध्यकाल या आधुनिककाल, मनुष्य ने जीवन के सभी क्षेत्रों में समस्त स्तरों पर ऐसा ही किया भी है। मैं यहाँ इस सम्बन्ध में किसी विस्तार में नहीं जाना चाहता। हमारे सामने सुदूर अतीत से लेकर अब तक की मनुष्य के विकास की प्रक्रिया है, जो स्वयं इस वास्तविकता को प्रमाणित कर सकती है। साथ ही, मानव का उपलब्ध इतिहास भी इस वास्तविकता को भली-भाँति प्रमाणित कर सकता है। भारतीयों ने अपने समृद्ध ढ़ंग से इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। यह ढ़ंग मानवीय व्यवहारों में अटूट सहनशीलता से जुड़ा है। यह ढंग व्यापक है और सहनशीलता का वाहक है। यह सद्भाव, समन्वय और सामंजस्य जैसी विशिष्टताओं से भरपूर है और यह भारतीय संस्कृति का पोषक है। इसीलिए, यह अनुकरणीय और ग्राह्य है।

भारतीय मार्ग के महान प्रतिनिधियों के नेतृत्व में भारतीयों ने समय-समय पर सारे संसार का नेतृत्व किया है। गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी उन्हीं महान प्रतिनिधियों में से थे। आज विश्व एक नए आयाम की ओर बढ़ रहा है। अभूतपूर्व जागृति, विकास और वैश्वीकरण की ओर बढ़ते कदमों ने हमारे सामने 'वसुधैव कुटुम्बकम' (सम्पूर्ण विश्व एक परिवार है) का चित्र प्रस्तुत किया है। यह सर्व-कल्याणकारी बने, इसके माध्यम से मानव-एकता स्थापित हो, इसके लिए हमारा अपना उत्तरदायित्व है। हमें अब इसे सुदृढ़ कर अपना मार्ग स्पष्ट करना होगा। हमें इसे विश्व-स्तर पर स्थापित करना होगा। यह हमारा सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। यदि हम ऐसा करते हैं, तो मुझे विश्वास है कि हम महात्मा गांधी के मार्ग पर भी चलेंगे।

गांधी दर्शन का स्वस्तिवाचन : प्रार्थना सभा

कृष्ण बिहारी पाठक

प्रार्थना सभाएँ महात्मा गांधी की जीवनचर्या का अनिवार्य अंग थीं। जिस तरह भारतीय संस्कृति में शुभकार्यों की सिद्धि के लिए कल्याणकारी स्वस्तिवाचन से शुरुआत की जाती है उसी प्रकार गांधी जी ने व्यक्ति समाज के वैचारिक उत्थान और आत्मिक पोषण के लिए प्रतिदिन प्रार्थना सभा को अपनाया।वे जहाँ जाते, जहाँ रहते प्रार्थना सभा का आयोजन संचालन वहाँ अवश्य करते।

गांधी दर्शन में निहित सात्विक संकल्प यथा स्वावलंबन, अहिंसा, विनय, धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक न्याय, आचरण की शुद्धता, निर्मलता, स्वदेशी आदि की साधना और सिद्धि के लिए, संचालन और क्रियान्वयन के लिए प्रार्थना सभा एक तरह से स्वस्तिवाचन थी।

गांधी जीवन दर्शन के अध्येताओं ने गांधी की जीवनचर्या के अभिन्न अंग के रूप में प्रार्थना सभा के गांभीर्य, मूल्यदृष्टि और प्रभाव को लक्ष्य किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि गांधी जी की प्रार्थना सभा पर देश विदेश में अनेक शोधकार्य हो चुके हैं, हो रहे हैं।

प्रार्थना केवल सैद्धांतिक या शाब्दिक स्तर तक ही सीमित न रहे इसके लिए गांधी जी ने प्रार्थना सभा को बहुआयामी विस्तार दिया था। वहाँ दैनंदिन की समस्याओं पर चर्चा होती, विरोध आलोचना या समर्थन में आने वाले पत्रों का सार्वजनिक वाचन होता और पत्रों में गांधी जी पर उठाए गए आक्षेपों, सवालों के जबाब गांधी जी सार्वजनिक रूप से ही प्रस्तुत करते। इस तरह से गांधी जी प्रार्थना सभा वैयक्तिक से लेकर वैश्विक चर्चा -चिंताओं पर मंथन करने के लिए एक खुला मंच भी थी।

प्रार्थना सभा में आलोचनात्मक पत्रों का सार्वजनिक वाचन और आक्षेपों के स्पष्टीकरण से जुड़ा एक सुरुचिपूर्ण प्रसंग है। एक पत्र में गांधीजी पर आक्षेप लगा कि वे बोलते समय 'शायद' का प्रयोग अधिक करते हैं। गांधीजी ने इस आक्षेप का प्रत्युत्तर जो सार्वजनिक रूप से प्रार्थना सभा में दिया वह वर्तमान परिदृश्य में और अधिक अर्थवान, ऊर्जावान होकर उभरता है।

गांधी जीवन दर्शन के अध्येताओं ने गांधी की जीवनचर्या के अभिन्न अंग के रूप में प्रार्थना सभा के गांभीर्य, मूल्यदृष्टि और प्रभाव को लक्ष्य किया । कहने की आवश्यकता नहीं कि गांधी जी की प्रार्थना सभा पर देश विदेश में अनेक शोधकार्य हो चुकें हैं, हो रहें हैं।

प्रार्थना केवल सैद्धांतिक या शाब्दिक स्तर तक ही सीमित न रहे इसके लिए गांधी जी ने प्रार्थना सभा को...।

गांधी जी का प्रत्युत्तर यह था कि यदि कोई बात निश्चयात्मक रूप से कही जाए कि यही सच है तो वह हिंसात्मक संप्रेषण की श्रेणी में आती हैं क्योंकि वह अन्य संभावित अभिव्यक्तियों को बिना सुने ही रोक देती है। जबकि शायद यह सही हो कहने पर अन्य संभावित अभिव्यक्तियों को भी अवसर रहते हैं।

अहिंसा के पोषक जैन मुनियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि एक सत्य के अनेक पक्ष हो सकते हैं। जिसे जो पक्ष दिखता है वह उसी की पैरवी करता है। ऐसे में निश्चयपूर्वक दृढ़ता से यह कहना कि 'केवल यही सच है' हिंसक संप्रेषण की श्रेणी में आता है। मन वचन और कर्म से अहिंसा में विश्वास करने वाला इतना ही कह सकता है कि 'शायद यह ठीक हो'। चूँकि सत्य के सभी पक्ष मनुष्य को एक साथ दिखाई नहीं देते ऐसे में 'केवल' और 'शायद' के प्रयोग का विवेक हमारे संप्रेषण की नीयत और नियति परिभाषित करता है।

आज जब हम बातचीत में हिंसामुक्त संप्रेषण या अहिंसक संप्रेषण (Non Violence Communication) के अभिनिवेश की बात करते हैं तो गांधी जी के एक-एक शब्द एक-एक कथन को ध्यान से समझने और अपनाने की आवश्यकता और महत्व सहजता से स्पष्ट हो जाता है।

हिंसा के नाम पर सबसे पहले और सबसे अधिक हिंसा के प्रत्यक्ष रूपों पर ही ध्यान जाता है जबकि अप्रत्यक्ष हिंसा भी उतनी ही विनाशक, विध्वंसक और नकारात्मक होती है जितनी कि प्रत्यक्ष हिंसा।

हिंसक संप्रेषण से मुक्ति या निवारण का सबसे बड़ा तरीका यही है कि हिंसामुक्त संप्रेषण को अपने दैनंदिन व्यवहार में अपनाया जाए। विश्व मानव और मानवता दिनोंदिन भौतिकता, मशीनीकरण और आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति के चलते संवादहीनता की ओर बढी जा रही है इसलिए हिंसामुक्त संप्रेषण इस युग की अनिवार्यता है।

हिंसामुक्त संप्रेषण के महत्व को देखते हुए देश के शिक्षाविदों, नीति नियंताओं और मनीषियों ने बालक तथा विद्यालयी परिवेश में हिंसामुक्त संप्रेषण को अपनाने पर बल दिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षार्थी की जिज्ञासा को उन्मुक्तता प्रदान करने और उसे संवाद के अवसर प्रदान करने आदि प्रावधानों की तह में बालक को हिंसा और भय से पूर्णतः मुक्त रखने की ही मंगलाशा है।

हिंसामुक्त संप्रेषण या अहिंसक संचार (Non Violence communication)/एनवीसी, की आज की शिक्षण व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका है। आज हम सायास होकर जिस दिशा में प्रयत्न कर रहे हैं गांधी दर्शन और चिंतन के अनुशीलन से अनायास ही उन संकल्पों को हस्तगत कर सकते हैं।

पीछे मुड़कर देखने की आवश्यकता है कि भारतीय संदर्भों में यह कोई नई बात नहीं है। ''वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ परायी जाणे रे'' गांधी जी की प्रार्थना माला का सुमेरू मनका है। गांधी जी का सर्वप्रिय भजन। यह भजन सच्चा भक्त, सच्चा मनुष्य, ईश्वर का अंश या वैष्णव जन उसी को कहता है जो पराई पीड़ा को स्वयं जाने, उसका अनुभव करे। ''पीर पराई जाने रे'' की अर्थध्वनि समानुभूति की अर्थध्वनि है। सहानुभूति से ऊपर उठकर ।

यह ठीक है कि आधुनिक परिदृश्य में जीवन मूल्यों के ये चिरंतन संकल्प समानुभूति, हिंसामुक्त संप्रेषण जैसी नवीन शब्दावली में पैठकर हमारे बीच उपस्थित हुए हैं परंतु अपरिभाषित होकर भी क्रियान्वयन के स्तर पर दैनंदिन जीवन में इनका अभिनिवेश गांधी जी ने बहुत पहले ही कर दिखाया था। गांधी द्वारा आयोजित प्रार्थना सभा इन शुभ संकल्पों के लिए प्रस्थान बिंदु थी।

गांधी जी ने प्रार्थना सभा को आचरण की शुचिता से जोड़कर देखा था इसीलिए अनेक पूर्वाभास और चेतावनियों के बाद भी प्रार्थना सभा में शामिल होने वाले व्यक्तियों की तलाशी गांधी जी ने नहीं लेने दी। गांधी जी की मान्यता थी कि प्रार्थना में आने वालों की तलाशी लेना ईश्वर के काम में बाधा पहुँचाने जैसा है।

मंत्रोपनिषद ईशावास्य में से लिए गए पहले मंत्र से शुरू होती गांधी आश्रम में होने वाली प्रार्थना सर्व-धर्म-सम-भाव के सिद्धांत पर आधारित थी। प्रार्थना

के प्रारंभिक श्लोक के महत्व को रेखांकित करते हुए स्वयं गांधी जी ने कहा है –

''मेरी प्रार्थना के आरंभ में प्रतिदिन ईशोपनिषद् के प्रथम श्लोक का पाठ होता है जिसका भावार्थ यह है कि प्रत्येक वस्तु पहले ईश्वर को अर्पण करो और उसके उपरांत अपनी आवश्यकता के अनुसार उसमें से लेकर इस्तेमाल करो। इसमें प्रमुख शर्त यह है कि जो वस्तू दूसरे की है, उसका लालच मत करो। ये दो सिद्धांत हिंदू धर्म का सारतत्व हैं।''

गांधी जी की प्रार्थना सभा में संत कवियों की वाणी, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के भजन, रामधुन, श्लोक, गीता पाठ, गीता उपदेश, बौद्ध प्रार्थना ,जरथुष्ट्री वाचन, कुरान के अंश आदि शामिल थे। इस तरह आश्रम में होने वाली प्रार्थना सर्वधर्म समभाव के सिद्धांत पर आधारित थी।

आपस में फूट डालकर राज करो की अनीति अपनाने वाले अंग्रेजों के विरुद्ध हिंदू मुस्लिम एकता और सर्व धर्म समभाव स्थापना में प्रार्थना सभा महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी। अनेक विद्वानों ने गांधी जी की प्रार्थना सभा को स्वतन्त्रता संग्राम के अनंतर आविष्कृत एक नैतिक आध्यात्मिक राजनीतिक संस्था कहा है ।

नवजीवन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित आश्रम भजनावलि में विभिन्न भजनों के राग और उनके गाने का समय, गीता, पांडव गीता, मुकंद माला के चुने हुए श्लोक और राम चरित मानस के कुछ अंश प्रकाशित हैं।

वैष्णवजन तो तेने कहिए, वृक्षन से मत ले , तू दयालु दीन हो तू दानी हो भिखारी, जाके प्रिय न राम वैदेहि, अब लौ नासनि अब न नसैहों, श्री राम चंद्र कृपालु भजमन, ठाकुर तुम शरणाई आया भजन गांधी जी को बहुत प्रिय थे। प्रार्थना के अंत में धुनें गाई जाती थीं, जिनमें रघुपति राघव राजा राम और श्री कृष्ण गोविंद हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेवा लोकप्रिय थीं।

गांधीजी ने अनेक स्थानों पर प्रार्थना को आत्मिक आहार की संज्ञा दी है जो कि आत्मा के पोषण के लिए आवश्यक है। अपने साथ के सभी लोगों की रुचि और धर्म की प्रार्थनाओं का समावेश गांधी जी करते चलते थे। जिस तरह सुरुचिपूर्ण आहार शरीर को स्वस्थ रखता है उसी प्रकार सुरुचिपूर्ण प्रार्थना मन को। गांधी जी का कथन है –

जिस प्रकार शरीर के लिए आहार आवश्यक है उसी प्रकार आत्मा के लिए प्रार्थना आवश्यक है। आदमी आहार के बिना कई दिनों तक काम चल सकता है–मैक स्विनी ने सत्तर दिन तक आहार नहीं लिया था–पर ईश्वर में आस्था रखने वाला व्यक्ति एक क्षण भी प्रार्थना के बगैर नहीं रह सकता, नहीं रहना चाहिए।

प्रार्थना सभा की जिन प्रार्थना भजन आदि को गांधी जी के सर्वप्रिय भजनों के रूप में रेखांकित किया जाता है उनकी अर्थध्वनि और मर्म को समझे जाने की आवश्यकता है। 'वैष्णव जन तो' की चर्चा हम ऊपर कर आए हैं जिसकी तह में समानुभूति का संदेश छिपा है। तुलसी की विनय पत्रिका का पद 'तू दयालु दीन हौं' विनय की मनोहारी भूमि है, संपूर्ण आत्मनिवेदन और समर्पण है। 'अब ना नसैहों' में पीछे की गई गलतियों, भूलों से तौबा है और भविष्य में न दोहराने का संकल्प।

आपाधापी और भौतिकता से आप्लावित इस युग में तो आत्मिक उपचार और उन्नति की आवश्यकता अधिक हो गई है। गांधी दर्शन चिंतन के स्वस्तिवाचन के रूप में परिभाषित प्रार्थना सभा आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। किंकर्तव्यविमूढ़ मानवता को समुचित पथ और पाथेय का दिग्दर्शन आलोक पुरुष महात्मा गांधी जी ने बहुत पहले ही करा दिया था। आवश्यकता है तो बस शुभ संकल्प और दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ उस पथ पर चलने की जहाँ दिगंत में यह मंत्र गूँज रहा है –'सबको सन्मति दे भगवान।'

संस्मरण

गांधी : एक नेता

म्यूरियल लेस्टर

मैं पहली बार 1926 में भारत गई। मेरा उद्देश्य गांधीजी से मिलना था। लंदन में प्रथम विश्व युद्ध के बाद ही हमने इस नए भारतीय नेता के बारे में सुनना शुरू किया था। हममें से कुछ ने रोमैँ रोलां की जीवनी के माध्यम से उनके आंदोलन का अध्ययन किया और हम यंग इंडिया के एक साल के अंकों वाले मोटे संग्रह को पढ़कर बहुत उत्साहित हो गए।

आश्रम में मेरा एक महीने का प्रवास बेहद संतोषजनक था, लेकिन कोई आश्चर्यजनक अनुभव नहीं हुआ। मैं लंदन के ईस्ट एंड के कम्युनिटी जीवन की अभ्यस्त थी। किंग्सले हॉल में ''सबसे गरीब, सबसे निम्नतम और उपेक्षित'' लोगों के साथ आत्म-संवेदना की परंपरा थी। कभी-कभी सुबह के अंधेरे में शुरू होने वाली नियमित प्रार्थना की अनुशासित दिनचर्या मेरे लिए जानी-पहचानी थी। बीसवीं सदी की शुरुआत से ही मैं उन यूरोपीय और अमेरिकी लोगों में शामिल थी जो अहिंसा को ईसाई जीवन का अनिवार्य हिस्सा मानते थे। इसी कारण हममें से हजारों लोग जेल गए, पुलिस द्वारा पूछताछ का सामना किया और उपहास झेला।

फिर आश्रम में वह कौन-सी गहन उपस्थिति थी जिसने मुझे इतना प्रभावित किया? शायद यह उस ऐतिहासिक युग का ज्वलंत केंद्र था, जिसमें स्थान, समय और नियति के व्यक्ति-तीनों एक साथ आए थे। और इसका परिणाम यह हुआ कि हमारी दुखभरी पृथ्वी को आत्म-विनाश से एक और अवसर मिला। साथ ही हम ईश्वर का आभार मानते हैं कि इस नेता में हास्य का नमक हर समय मौजूद था-सुबह के 3:50 बजे भी।

भारत छोड़ने से पहले, मैं गुवाहाटी में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अधिवेशन में गई और कोलकाता में बापूजी के साथ रही। वहीं गांधीजी ने मुझे सत्य के व्रत के निहितार्थों से परिचित कराया। उन्होंने कहा, ''म्यूरियल, यदि तुम घर जाकर ब्रिटिश शासन की आलोचना करना चाहती हो, तो उससे पहले वायसराय से मिलकर अपनी बात कहनी चाहिए। तुम्हें उन्हें यह अवसर देना होगा कि वे तुम्हारी आलोचना को गलत सिद्ध कर सकें। साथ ही, यह उचित नहीं होगा कि तुम इस प्रांत के राज्यपाल से मिले बिना चली जाओ, क्योंकि तुम इंग्लैंड जाकर जो कहने

आश्रम में मेरा एक महीने का प्रवास बेहद संतोषजनक था, लेकिन कोई आश्चर्यजनक अनुभव नहीं हुआ। मैं लंदन के ईस्ट एंड के कम्युनिटी जीवन की अभ्यस्त थी। किंग्सले हॉल में ''सबसे गरीब, सबसे निम्नतम और उपेक्षित'' लोगों के साथ आत्म-संवेदना की परंपरा थी। कभी-कभी सुबह के अंधेरे में शुरू होने वाली नियमित प्रार्थना की अनुशासित दिनचर्या मेरे लिए जानी-पहचानी थी। बीसवीं सदी की शुरुआत से ही मैं उन यूरोपीय और अमेरिकी लोगों...।

वाली हो, वह उन्हें पहले ही बता देना चाहिए।''

यह प्रस्ताव मुझे बेहद डरावना और भारी लगा। मैं, एक साधारण ईस्ट लंदन निवासी, कैसे वायसराय भवन की संगमरमर की सीढ़ियाँ चढ़कर उन गेरुए मखमली वस्त्रों में सजे सेवकों से कहती कि मुझे लॉर्ड इरविन से मिलना है?

पर गांधीजी ने मेरी भावनाओं की कोई परवाह नहीं की और उसी अपने सामान्य, निष्पक्ष, असंवेदनात्मक शैली में निर्देश देना जारी रखा –''लंदन पहुँचने पर सीधे इंडिया ऑफिस जाओ और उन्हें बताओ कि तुम क्या कर रही हो।'' मैंने इसका तीव्र विरोध किया क्योंकि मैं एक समाजवादी थी और भारत मामलों के तत्कालीन सचिव की नीतियों से मुझे घृणा थी। लेकिन गांधी अडिग रहे, न सहानुभूति दिखाई, न विचलित हुए। ''तुम्हें जाना ही होगा,'' उन्होंने कहा, ''इनमें से कुछ लोग तुम्हारी मदद कर सकते हैं। यदि वे न करें, तो उनके इनकार को अपनी शक्ति बना लो।''

और हुआ भी वैसा ही, जैसा उन्होंने कहा था। वास्तव में मुझे उनमें से कुछ से बहुत सहयोग मिला। एक जीवनभर का मित्र बना, दूसरा किंग्सले हॉल का संरक्षक और समय ने मेरे भीतर के लड़ाकूपन को भी थोड़ा शांत कर दिया।

1931 में राउंड टेबल सम्मेलन के तीन साल बाद, जब वे हमारे अतिथि के रूप में ईस्ट एंड में दस सप्ताह रहे, मैं दोबारा भारत लौटी। उस दौरान मैं उनके साथ हरिजनों के लिए किए गए महान दौरों पर और बिहार भूकंप राहत कार्य में रही–रात को यात्रा और दिनभर अनगिनत सभाओं में भागीदारी। वे सैकड़ों लोगों को अपने हस्ताक्षर देते समय प्राय: नीचे एक पंक्ति भी लिखते–

''सत्य ही ईश्वर है।''

एक दिन उन्होंने अचानक मेरी ओर मुड़कर कहा, ''मुझे मालूम है कि बाइबिल यह बात उलटकर कहती है – 'ईश्वर सत्य है।' दोनों कथनों का अर्थ एक ही है। मैंने बस इसे इस तरह कहा है ताकि लोग इस बात के असली अर्थ पर ध्यान दे सकें।''

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, सतत प्रार्थना, अनुशासन – ये सब इस विनम्र, जीवंत, नि:स्वार्थ, और हास्यप्रिय

ईश्वर–भक्त पुरुष में साकार हो उठते थे। वे कभी आम लोगों से दूर नहीं हुए, कभी कठिन शब्द या अमूर्त सिद्धांत नहीं बोले, कभी कुछ कहा तो उसका आचरण भी स्वयं किया। ऐसे ही एक व्यक्ति के कारण ब्रिटेन ने 40 करोड़ भारतीयों को अपने अधीन रखने की झूठी स्थिति से मुक्ति पाई। पश्चिमी देशों में अहिंसात्मक आंदोलनों को नया साहस और विश्वास मिला – उन आंदोलनों को चलाने वाले साधारण लोगों ने दो विश्वयुद्धों के दौरान अपने प्राणों तक की आहुति दी।

आज विनोबा और उनके अनुयायी हर्षपूर्वक आगे बढ़ रहे हैं। भारत के सैकड़ों हजार गाँवों में गांधी द्वारा प्रशिक्षित कार्यकर्ता अच्छा जीवन जी रहे हैं और दूसरों को भी प्रेरित कर रहे हैं।

अब गांधी के लौटने की कोई आवश्यकता नहीं है। ईश्वर की यह आत्मा संसार भर में महान लोगों के साथ–साथ सबसे विनम्र और सरल लोगों में भी कार्य कर रही है।

सामयिक

विदेश में हिंदी सिखाने और सीखने की व्यावहारिक समस्याएं और संभावित समाधान

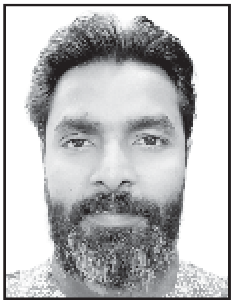

डॉ. शैलेश शुक्ला

हिंदी भाषा केवल भारत की नहीं, बल्कि वैश्विक सांस्कृतिक विरासत का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है। वर्तमान में हिंदी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। लगभग 60 करोड़ लोग हिंदी बोलते हैं, जिनमें से करोड़ों प्रवासी और विदेशी नागरिक हैं। अमेरिका, इंग्लैंड, फिजी, मॉरीशस, सूरीनाम, नेपाल, दक्षिण अफ्रीका और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में हिंदी भाषी समुदायों की मौजूदगी के कारण वहाँ हिंदी के सिखने और सिखाने की मांग तेजी से बढ़ी है।

फिर भी, हिंदी को एक अंतरराष्ट्रीय स्तर की भाषा के रूप में स्थायित्व प्रदान करने के लिए केवल उसकी सांख्यिकीय उपस्थिति पर्याप्त नहीं है। जरूरत है सुव्यवस्थित, तकनीक-सक्षम, रोजगार-उन्मुख और सांस्कृतिक रूप से अनुकूलित शिक्षण व्यवस्था की। इस लेख में हम विस्तार से उन व्यावहारिक समस्याओं का अध्ययन करेंगे जो विदेशों में हिंदी सिखाने और सीखने के मार्ग में बाधा बनती हैं और साथ ही संभावित समाधानों की चर्चा भी करेंगे।

विदेशों में हिंदी सिखाने की सबसे बड़ी समस्या प्रशिक्षित और प्रमाणित हिंदी शिक्षकों की कमी है। बहुत से देशों में हिंदी शिक्षा प्रवासी समुदाय के स्वयंसेवी प्रयासों पर निर्भर होती है, जहाँ शिक्षक शुद्धतापूर्वक पढ़ाने के लिए न तो पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त कर पाते हैं और न ही उन्हें संस्थागत सहयोग मिलता है। कई बार स्थानीय विश्वविद्यालयों में हिंदी को पढ़ाने के लिए केवल भाषा जानना ही योग्यता मान ली जाती है, जबकि भाषा शिक्षण एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके लिए विषय विशेषज्ञता, भाषाशास्त्र की समझ, और पद्धतिगत प्रशिक्षण आवश्यक होता है।

इस स्थिति का समाधान तभी संभव है जब भारत सरकार या विश्व हिंदी सचिवालय जैसे संस्थान वैश्विक स्तर पर **हिंदी शिक्षकों के लिए प्रमाणित प्रशिक्षण कार्यक्रम** प्रारंभ करें। यह Global Hindi Teacher Certification Programme न केवल शिक्षकों को प्रशिक्षित करेगा, बल्कि उन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता भी प्रदान करेगा। साथ ही,

विदेशों में हिंदी सिखाने की सबसे बड़ी समस्या प्रशिक्षित और प्रमाणित हिंदी शिक्षकों की कमी है। बहुत से देशों में हिंदी शिक्षा प्रवासी समुदाय के स्वयंसेवी प्रयासों पर निर्भर होती है, जहाँ शिक्षक शुद्धतापूर्वक पढ़ाने के लिए न तो पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त कर पाते हैं और न ही उन्हें संस्थागत सहयोग मिलता है। कई बार स्थानीय विश्वविद्यालयों में हिंदी को पढ़ाने के लिए केवल भाषा जानना ही योग्यता मान ली जाती है, जबकि भाषा शिक्षण...।

विदेशों में स्थित भारतीय दूतावासों को भी यह उत्तरदायित्व दिया जाना चाहिए कि वे स्थानीय स्तर पर ऐसे शिक्षकों की पहचान कर उन्हें समय-समय पर आवश्यक प्रशिक्षण उपलब्ध कराएं।

हिंदी सीखने वाले विदेशी छात्रों की भाषा पृष्ठभूमि, संस्कृति, और उद्देश्य भारत के छात्रों से भिन्न होते हैं। लेकिन वर्तमान में जो पाठ्यपुस्तकें और पाठ्यक्रम उपयोग में लाए जा रहे हैं, वे अधिकतर भारतीय छात्रों को ध्यान में रखकर बनाए गए हैं। इससे विदेशी विद्यार्थियों के लिए न तो भाषा सीखना सुगम होता है, न ही उनकी रुचि लंबे समय तक बनी रह पाती है। उदाहरण के लिए, भारतीय व्याकरण की गहन संरचनात्मक पढ़ाई शुरुआती विदेशी छात्रों के लिए बोझिल हो सकती है।

इसके अतिरिक्त, कई देशों में आधुनिक शिक्षण उपकरणों जैसे इंटरैक्टिव सामग्री, ऑडियो-विजुअल सहायता, ऑनलाइन अभ्यास, आदि की भी भारी कमी है। परिणामस्वरूप शिक्षण पारंपरिक ढाँचे में सीमित रह जाता है जो आज के युवाओं के लिए आकर्षक नहीं है। इस समस्या के समाधान के लिए एक **बहुस्तरीय और लचीला पाठ्यक्रम** तैयार किया जाना चाहिए जो विभिन्न स्तरों (शुरुआती, मध्यवर्ती, उन्नत) और उद्देश्य (सांस्कृतिक, रोजगारपरक, शैक्षणिक) के अनुसार अनुकूलित हो। इस कार्य में भारतीय भाषाविज्ञान संस्थानों, तकनीकी विशेषज्ञों और विदेशी भाषा विश्वविद्यालयों की साझेदारी होनी चाहिए। इससे सामग्री की गुणवत्ता और प्रसंगिकता दोनों बढ़ेगी।

आज का युग डिजिटल युग है और भाषा शिक्षा भी इससे अछूती नहीं रह सकती। लेकिन हिंदी भाषा सिखाने के डिजिटल माध्यम अब भी सीमित और अपर्याप्त हैं। हिंदी सीखने के लिए कुछ ऐप्स (जैसे Duolingo, Hello Hindi, आदि) उपलब्ध हैं, पर उनकी गुणवत्ता, व्यापकता और गहराई अभी विकसित देशों की भाषाओं के समान स्तर तक नहीं पहुँच पाई है। इसके अलावा, हिंदी में अच्छे ऑडियोबुक, इंटरैक्टिव वेबसाइट्स, वर्चुअल रियलिटी आधारित भाषा शिक्षण प्लेटफॉर्म या MOOC कोर्स बहुत ही कम हैं। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि हिंदी भाषा को तकनीकी निवेश के लायक नहीं माना जाता, जिससे स्टार्टअप या डिजिटल कंटेंट निर्माता इस दिशा में ध्यान नहीं देते।

इस चुनौती का समाधान एक Hindi Digital Mission की स्थापना से हो सकता है, जिसमें सरकार, प्रौद्योगिकी कंपनियाँ, स्टार्टअप्स और भाषा शिक्षाविद मिलकर हिंदी के लिए उन्नत डिजिटल समाधान तैयार करें। इसमें AI आधारित अनुवाद, स्वचालित उच्चारण मूल्यांकन, संवादात्मक चैटबॉट, और ऑडियो-वीडियो आधारित पाठ शामिल किए जाएँ। इससे विदेशों में हिंदी सीखने वाले विद्यार्थियों को अधिक रुचिकर और सहज अनुभव मिलेगा।

भाषा की शिक्षा तभी व्यावहारिक बनती है जब वह जीवन में किसी उपयोग से जुड़ी हो। विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी सीखना एक रोचक अनुभव हो सकता है, लेकिन यदि इसका करियर में कोई प्रत्यक्ष लाभ न हो तो उनमें दीर्घकालिक रूचि बनाए रखना कठिन हो जाता है। हिंदी को वैश्विक मंच पर केवल सांस्कृतिक या साहित्यिक भाषा के रूप में प्रस्तुत करने की बजाय इसे **व्यवसाय, पर्यटन, मीडिया, अनुवाद, और तकनीकी संवाद** की भाषा के रूप में स्थापित करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, भारत में BPO सेक्टर, ट्रेवल और टूरिज्म, योग-आयुर्वेद सेवाओं और डिजिटल मार्केटिंग में

आज का युग डिजिटल युग है और भाषा शिक्षा भी इससे अछूती नहीं रह सकती। लेकिन हिंदी भाषा सिखाने के डिजिटल माध्यम अब भी सीमित और अपर्याप्त हैं। हिंदी सीखने के लिए कुछ ऐप्स (जैसे Duolingo, Hello Hindi, आदि) उपलब्ध हैं, पर उनकी गुणवत्ता, व्यापकता और गहराई अभी विकसित देशों की भाषाओं के समान स्तर तक नहीं पहुँच पाई है। इसके अलावा, हिंदी में अच्छे ऑडियोबुक, इंटरैक्टिव वेबसाइट्स, वर्चुअल रियलिटी आधारित भाषा शिक्षण प्लेटफॉर्म या डव्ळ कोर्स बहुत ही कम हैं। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि हिंदी भाषा...!

काम करने वाले विदेशी युवाओं के लिए हिंदी का ज्ञान एक अतिरिक्त योग्यता हो सकता है।

यदि अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में हिंदी को इन क्षेत्रों से जोड़ते हुए पाठ्यक्रम तैयार किए जाएँ तो यह हिंदी को कैरियर उन्मुख बना सकता है। इसके साथ-साथ भारतीय कंपनियों और सरकारी विभागों को भी ऐसे कर्मचारियों की आवश्यकता महसूस करानी चाहिए जो हिंदी और अंग्रेजी दोनों में दक्ष हों। इससे हिंदी का वैश्विक औपचारिक उपयोग भी बढ़ेगा।

इन सभी समस्याओं का समाधान केवल व्यक्तिगत या संस्थागत प्रयासों से संभव नहीं है। इसके लिए एक समग्र और समन्वित नीति की आवश्यकता है जिसे वैश्विक हिंदी नीति (Global Hindi Policy) कहा जा सकता है। यह नीति भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों, विश्व हिंदी सचिवालय, ICCR, और अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालयों के संयुक्त प्रयास से तैयार होनी चाहिए। इस नीति में निम्नलिखित पहलुओं को शामिल किया जाना चाहिए - **शिक्षकों का प्रशिक्षण और प्रमाणन, अंतरराष्ट्रीय स्तर का पाठ्यक्रम विकास, डिजिटल कंटेंट और टेक प्लेटफॉर्म का निर्माण, हिंदी को रोजगार से जोड़ने की रणनीति और प्रवासी समुदाय की भागीदारी और समर्थन।** यह नीति केवल सरकारी प्रयासों पर निर्भर नहीं होनी चाहिए, बल्कि निजी कंपनियों, तकनीकी संस्थानों, एनजीओ और अंतरराष्ट्रीय भाषायी मंचों को भी इस मिशन में भागीदार बनाना चाहिए।

हिंदी भाषा आज विश्व में केवल भारत की प्रतिनिधि नहीं रही, बल्कि यह एक ऐसे समुदाय की आवाज है जो संस्कृति, भावना, विचार और संवाद को जोड़ती है। लेकिन इस भाषा को वैश्विक स्तर पर सशक्त करने के लिए हमें योजनाबद्ध, संसाधन-संपन्न और व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। हिंदी को केवल साहित्य या भावनात्मक जुड़ाव की भाषा के रूप में देखने के बजाय उसे तकनीकी, वैज्ञानिक, आर्थिक और वैश्विक संवाद की भाषा के रूप में स्थापित करना समय की मांग है। इस दिशा में डिजिटल माध्यमों, वैश्विक शिक्षक प्रशिक्षण, रोजगारपरक पाठ्यक्रम और सरकारी नीति की ठोस भूमिका आवश्यक है।

हमें यह समझना होगा कि हिंदी का वैश्विक भविष्य केवल उसकी वर्तमान स्थिति पर निर्भर नहीं है, बल्कि हमारे समर्पित प्रयासों और दूरदर्शी रणनीतियों पर आधारित है। यदि हम समवेत प्रयास करें, तो हिंदी निश्चय ही वैश्विक भाषाओं की अग्रिम पंक्ति में स्थान पा सकती है।

भारतीयता की पहचानः योग और अध्यात्म

डॉ. दीपक शर्मा

– डॉ ऋतु

विश्वभर में भारत के योगदान की जब भी बात की जाती है तो 'योग' एवं 'अध्यात्म' की बात होना अनिवार्य हो जाता है। भारतीय गौरवपूर्ण इतिहास में योग और अध्यात्म का एक विशाल फलक सम्पूर्ण विश्व को देखने को मिलता है। 'योग' का शाब्दिक उत्त्पत्तिपरक सन्दर्भ जाने तो योग शब्द संस्कृत भाषा के शब्द 'युज' से बना है, जिसका अर्थ है जोड़ना। अनेक जन इस अर्थ को केवल 'योगफल' से सम्बंधित मानकर चलते हैं लेकिन इसका सटीक एवं व्यापक अर्थ– शरीर, मन और आत्मा के मिलन या जुड़ने से है। योग शरीर, मन, और आत्मा की सामंजस्य की तरफ बढ़ने वाला एक सुमार्ग है। 'छांदोग्य उपनिषद' में प्रत्याहार का तो बृहदअरण्यक के एक स्तवन (वेद मंत्र) में प्राणायाम के अभ्यास का उल्लेख मिलता है। "योग याज्ञवल्क्य" में भी बाबा याज्ञवल्क्य और शिष्य ब्रह्मवादी गार्गी के बीच कई साँस लेने सम्बन्धी व्यायाम, शरीर की सफाई के लिए आसन और ध्यान का उल्लेख है। गार्गी द्वारा छांदोग्य उपनिषद में भी योगासन के बारे में बात की गई है। अथर्ववेद में उल्लेखित संन्यासियों के एक समूह, वार्ता (सभा) द्वारा, शारीरिक आसन जोकि योगासन के रूप में विकसित हो सकता है पर बल दिया गया है।' यहाँ तक कि संहिताओं में उल्लेखित है कि प्राचीन काल में मुनियों, महात्माओं, विभिन्न साधु और संतों द्वारा कठोर शारीरिक आचरण, ध्यान व तपस्या का अभ्यास किया जाता था। योग धीरे–धीरे एक अवधारणा के रूप में उभरा है। भगवद–गीता के साथ–साथ, महाभारत के शांतिपर्व में भी योग का एक विस्तृत उल्लेख मिलता है। हिंदू–दर्शन के प्राचीन मूलभूत सूत्र के रूप में योग की चर्चा की गई है और शायद सबसे अलंकृत पतंजलि योगसूत्र में इसका उल्लेख किया गया है। पतंजलि का लेखन भी अष्टांग योग के लिए आधार बन गया। जैन धर्म की पांच प्रतिज्ञा और बौद्ध धर्म के योगाचार की जडें पतंजलि योगसूत्र मे निहित हैं।

भारतीय गौरवपूर्ण इतिहास में योग और अध्यात्म का एक विशाल फलक सम्पूर्ण विश्व को देखने को मिलता है। 'योग' का शाब्दिक उत्त्पत्तिपरक सन्दर्भ जाने तो योग शब्द संस्कृत भाषा के शब्द 'युज' से बना है, जिसका अर्थ है जोड़ना। अनेक जन इस अर्थ को केवल 'योगफल' से सम्बंधित मानकर चलते हैं लेकिन इसका सटीक एवं व्यापक अर्थ– शरीर...।

"योग" के वर्तमान स्वरूप के बारे में, पहली बार उल्लेख शायद कठोपनिषद में आता है, यह यजुर्वेद की कथाशाखा के अंतिम आठ वर्गों में पहली बार शामिल होता है जोकि एक मुख्य और महत्वपूर्ण उपनिषद है। योग को यहाँ भीतर (अन्तर्मन) की यात्रा या चेतना को विकसित करने की एक प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है। गौरतलब है कि योग और अध्यात्म ही वह माध्यम है जिससे आत्म-चेतना का परम-चेतना से मिलन होता है। इन दोनों का संबंध मात्र शारीरिक अभ्यास से ही नहीं अपितु प्राचीनतम ज्ञान से भी है जो हमें स्वस्थ, खुश व शांतिपूर्ण जीवन जीने का मार्गदर्शन प्रदान करता है-जिसका अंतिम लक्ष्य है स्वयं से मिलन। गांधी जी ने कहा था कि अच्छी शिक्षा में मन, मस्तिष्क और हस्त का समन्वय होना जरूरी है। गांधी जी की इस बात को हम योगाध्यात्म से भी जोड़ कर देख सकते हैं क्योंकि योगाध्यात्म का संबंध भी मन, मस्तिष्क और शरीर से होता है। योग साध्य भी है और साधन भी है। लेकिन यह सत्य है कि योग और अध्यात्म परस्पर निर्भर न होकर, परिपूरक हैं। जहाँ योग है वहां अध्यात्म अनिवार्यतः उपस्थित है एवं अध्यात्म के साथ योग का अटूट सम्बन्ध है।

योगा को एक शारीरिक कसरत के तौर पर अधिक लिया जा रहा है जिसे बच्चों से लेकर बुजुर्ग तक, पार्क-बगीचों के अलावा घर के कमरों, छत एवं बालकनी में करते हैं। ऐसे योगा में अध्यात्म हमें दिखाई नहीं पड़ता या बहुत ही न्यून स्थिति में रहता है। हम बार बार इस बात पर जोर दे रहे है कि योग और अध्यात्म परस्पर परिपूरक हैं अर्थात दोनों साथ रहकर ही संभव हो पाते हैं। इसे हम ऐसे भी कह सकते हैं कि योग के माध्यम से अध्यात्म तथा अध्यात्म के द्वारा योग को प्राप्त कर सकते हैं। प्राचीन काल से ही श्रेष्ठ ऋषि-मुनियों के लिए योगाध्यात्म सर्वाधिक सुलभ एवं महत्वपूर्ण साधन रहा है।

आजकल हम देखते हैं कि आधुनिकता के प्रभाव में जैसे आज 'राम', रामा हो गया, 'कृष्ण' कृष्णा हो गया, 'अशोक' अशोका हो गया, ठीक वैसे ही योग अब 'योगा' बन गया है। लोगों के मुख से सर्वाधिक योगा शब्द का प्रचलन देखने को मिलता है। परिणामस्वरूप आज 'योग' और 'योगा' को एक मानने की गलती हो जाती है। लेखक का यह मानना है कि जो स्थान 'योग' का सदियों से रहा है आज वह स्थान 'योगा' नहीं ले सकता। इसका सबसे बड़ा कारण 'अध्यात्म' है। योग में जहाँ अध्यात्म एक अनिवार्य कसौटी है वहीं वर्तमान के योगा में यह जरूरी प्रतीत नहीं होता है। योगा को एक शारीरिक कसरत के तौर पर अधिक लिया जा रहा है जिसे बच्चों से लेकर बुजुर्ग तक, पार्क-बगीचों के अलावा घर के कमरों, छत एवं बालकनी में करते हैं। ऐसे योगा में अध्यात्म हमें दिखाई नहीं पड़ता या बहुत ही न्यून स्थिति में रहता है। हम बार बार इस बात पर जोर दे रहे है कि योग और अध्यात्म परस्पर परिपूरक हैं अर्थात दोनों साथ रहकर ही संभव हो पाते हैं। इसे हम ऐसे भी कह सकते हैं कि योग के माध्यम से अध्यात्म तथा अध्यात्म के द्वारा योग को प्राप्त कर सकते हैं। प्राचीन काल से ही श्रेष्ठ ऋषि-मुनियों के लिए योगाध्यात्म सर्वाधिक सुलभ एवं महत्वपूर्ण साधन रहा है। योग और योगा को हम ऐसे भी व्याख्यायित कर सकते हैं कि 'योग' संत-मुनियों तथा 'योगा' आधुनिक मनुष्य का साधन है। इन दोनों की बुद्धि-विवेक में भी बहुत अंतर है इसलिए योग और योगा में भी बहुत अंतर होता है। कोई संत-महात्मा किसी वृक्ष से टूटे हुए फल के बारे में सोचकर सम्पूर्ण वृक्ष की चिंता करता है जबकि साधारण मनुष्य की चिंता का केंद्र फल रहता है। ऐसे ही मनुष्य अपनी स्वार्थ एवं उदरपूर्ति हेतु लकड़ियाँ काटता रहता है फिर भले ही सम्पूर्ण बाग उजड़ जाये लेकिन संत-महात्मा की दृष्टि सदैव वन पर टिकी रहती है। संतो की यह दृष्टि योगाध्यात्म का ही परिणाम है जिसका अभाव हमें वर्तमान केमनुष्य में दिखाई देता है। अध्यात्म का अटूट सम्बन्ध योग से रहा है। हिन्दुओं का पवित्र ग्रन्थ 'गीता' अध्यात्म का प्रमुख ग्रन्थ माना जाता है जिसके सभी अट्ठारह अध्यायों का शीर्षक अनन्य रूप से

किसी न किसी योग से सम्बंधित हैं। योग को यदि मानव शरीर माना जाये तो अध्यात्म को मस्तिष्क कह सकते हैं। जैसे एक स्वस्थ मानव सुन्दर शरीर और प्रखर मस्तिष्क का संयोग है, ठीक उसी तरह योग भी अध्यात्म के बिना व्यर्थ है। कहना होगा कि अनादिकाल से ही प्रत्येक मनुष्य आनंद प्राप्त करना चाहता है और प्राचीन समय से ही ऋषि-मुनि योगाध्यात्म द्वारा ऐसी परम चेतना की अवस्था प्राप्त कर लेते थे जहाँ उन्हें स्वत: स्वस्थ, आनंद व सार्थक जीवन जीने की कला का साक्षात्कार हो जाता था। मनुष्य 'योगा' के फेर में पड़कर इस स्तर से अभी काफी दूर ही नजर आता है। अधिकतम विशेषज्ञों का भी यही मानना है कि आज भले ही योग का प्रयोग केवल शारीरिक व्याधियों से मुक्ति पाने के लिए किया जाता है लेकिन आध्यात्मिकता के अभाव में योग प्रभावी नहीं है। योगाध्यात्म ही मानव जीवन के लिए हितकारी है। यहाँ तक कि देश-विदेश की सरकारें भी मनुष्य की प्रतिरोधक शक्ति को बढाने एवं उसे मजबूत करने हेतु योग की सलाह दे रहीं है। यह सब वर्तमान में योग के विस्तार और उसके प्रभुत्व को ही प्रस्तुत कर रहे हैं। यद्यपि यह योग अध्यात्म न्यून ही है जो अपनी सम्पूर्णता में परिणाम नही दे सकता है।

गौरतलब है कि इक्कीसवीं सदी में योग-क्रांति का श्रेय योगगुरु रामदेव बाबा को भी जाता है जिन्होंने योग को घर-घर पहुँचाने में अपना विशेष योगदान दिया है। हालाँकि यह भी सच है कि उन्होंने योग के माध्यम से पातंजलि-उत्पादों का भी भरसक प्रचार-प्रसार किया है। यद्यपि हम इस तथ्य को भी नही नकार सकते कि योग की घरों में पैठ करवाने का बहुत बड़ा योगदान स्वामी रामदेव जी का भी है। हमे याद है कि रामदेव बाबा ने विभिन्न व्याधियों से लड़ने के लिए अनेक कैसेट्स-और सीडी बाजार में उतारी थीं। जिसका परिणाम यह हुआ कि पार्कों में योग करने वालों की भीड़ एकाएक बढ़ने लगी, कई बीमारियों के लिए लोग परस्पर योगासन बताने लगें। रामदेव बाबा के कहे अनुसार खान-पान अपनाते हुए अन्य लोगों को भी सलाह देने लगे। मतलब एकाएक घर घर में योग ने अपनी गहरी पैठ बनानी शुरू कर दी। बाग-बगीचों के अलावा स्कूल-कॉलेज में भी योग करवाया जाने लगा। यहाँ तक कि अनेक बड़ी-बड़ी राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों में भी स्वास्थ्य जागरूकता के तहत कर्मचारियों को नि:शुल्क योग सिखाया जाने लगा। विभिन्न समाज सेवी संस्थाएं भी योग-जागरूकता हेतु आगे आकर कार्य करने लगी। अभी भारत में भी 'फिट-इंडिया' कार्यक्रम का संचालन हुआ जिसे आदरणीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी के अलावा फिल्मी सितारों, क्रिकेटरों जैसी बड़ी बड़ी हस्तियों ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। उल्लेखनीय है कि इस 'फिट-इंडिया' कार्यक्रम में योग ने बहुत प्रभावी भूमिका निभाई और अभी भी निभा रहा है। विश्वभर में भारतीय योग के बढ़ते हुए प्रभुत्व को देखते हुए ही 21 जून को संयुक्त राष्ट्र द्वारा 'अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस' के रूप में मनाया जाने लगा है। यद्यपि योग का यह स्वरुप अध्यात्म-न्यून ही है जिसका मुख्य उद्देश्य केवल शारीरिक अभ्यास भर है। हमने पहले भी कहा है कि योग और अध्यात्म परस्पर पूरक हैं। यहाँ योग है वहां अध्यात्म होना जरूरी है और जहाँ अध्यात्म है वहां योग अवश्य होगा। योगाध्यात्म ही यथार्थ है। जिसे आज हम 'मेडिटेशन' कहते हैं वस्तुत: यह अध्यात्म का ही एक रूप

योग को यदि मानव शरीर माना जाये तो अध्यात्म को मस्तिष्क कह सकते हैं। जैसे एक स्वस्थ मानव सुन्दर शरीर और प्रखर मस्तिष्क का संयोग है, ठीक उसी तरह योग भी अध्यात्म के बिना व्यर्थ है। कहना होगा कि अनादिकाल से ही प्रत्येक मनुष्य आनंद प्राप्त करना चाहता है और प्राचीन समय से ही ऋषि-मुनि योगाध्यात्म द्वारा ऐसी परम चेतना की अवस्था प्राप्त कर लेते थे जहाँ उन्हें स्वत: स्वस्थ, आनंद व सार्थक जीवन जीने की कला का साक्षात्कार हो जाता था। मनुष्य 'योगा' के फेर में पड़कर इस स्तर से अभी काफी दूर ही नजर आता है। अधिकतम विशेषज्ञों का भी यही मानना है कि आज भले ही योग का प्रयोग केवल शारीरिक व्याधियों से मुक्ति पाने के लिए किया जाता है।

है लेकिन समस्या यह है कि लोग योग और मेडिटेशन को अलग अलग देखते हैं यद्यपि यह अलग नहीं है। योग जहाँ शारीरिक व्याधियों के लिए उपयुक्त है वहीँ अध्यात्म मानसिक विकारों के लिए रामबाण इलाज है। आज की इस भागदौड़ एवं एकाकी होती दुनिया में मानसिक विकारों का अम्बार लगा हुआ है जिससे लड़ने में हमे योगाध्यात्मही काम आने वाला है। आज हम सामाजिक एवं व्यापारिक दबावों के चलते अनेक कुंठाओं से ग्रस्त हो चले हैं जिसकी दवा मेडिकल साइंस में भी नहीं बनी है। केवल योगाध्यात्म ही इनसे मुक्ति दिलाने में कारगार माध्यम है। आदरणीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के योगगुरु व 'स्वामी विवेकानंद योग अनुसंधान संस्थान' के कुलपति पद्मश्री डॉ. एच आर नागेन्द्र जी ने अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (ऋषिकेश) में आयोजित अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में कहा कि 'योग और अध्यात्म भारत की विश्व को महान देन है। आयुष और योग के माध्यम से शरीर की कई व्याधियों को दूर किया जा सकता है। भारत के संतों ने सृष्टि के नियमों और तत्वों को खोजने के बाद यह साबित किया कि यह शरीर भौतिक है। मन में उत्पन्न आधि शरीर में आने के बाद व्याधि बन जाती है। हाइपरटेंशन और कैंसर जैसी बीमारियों में पूरी जिंदगी दवा खाने में गुजर जाती है मगर अब आयुष और योग के माध्यम से इसे भी ठीक किया जा सकता है। एक सामान्य जन तक को योग का महत्व समझाने की जरूरत है। जिसके लिए इन लोगों तक योग के वैज्ञानिक साक्ष्य पहुंचाने होंगे। एम्स जैसी बड़ी संस्थाएं इस दिशा में अच्छा काम कर सकती है। 500 से ज्यादा जनरल प्रकाशित कर विद्वानों ने योग के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को सफलतापूर्वक समझाने का प्रयास किया है।' आगे उन्होंने बताया कि' अभी दिल्ली से हर विभाग में इसकी शुरुआत की गई है। योग अनुसंधान केंद्र भी इसका एक माध्यम बन रहा है। आध्यात्मिक शक्ति और योग के माध्यम से हम जीवन पद्धति को सुखमय बना सकते हैं। आज पुरातन जीवन पद्धति को अपनाने की जरूरत है। संतुलित आहार और शारीरिक व्यायाम बहुत लाभकारी साबित हो रहे हैं। योग के लिए वातावरण भी स्वच्छ होना चाहिए। प्रधानमंत्री ने समूचे देश में स्वच्छता अभियान शुरू किया है मगर, हमारे शरीर के अंदर का वातावरण भी स्वच्छ होना जरूरी है। योग यही सिखाता है कि मनुष्य में आंतरिक शुचिता और स्वच्छता कैसे लाई जा सकती है।'

अंत में अपनी लेखनी को विराम देने से पहले हिंदी सिनेमा की शानदार फिल्म 'थ्री-इडियट्स' के एक दृश्य की चर्चा कर लेते है; जब एक होनहार इंजीनियर जॉय लोबो नामक लड़का मानसिक दवाब के चलते आत्महत्या कर लेता है। जब जॉय लोबो का अंतिम संस्कार किया जा रहा होता है तो उस समय रैंचो (आमिर खान) कॉलेज-प्रमुख वीरू सहस्त्रबुद्धि (बोमन इरानी) को जॉय की हत्या का जिम्मेदार मानते हुए आत्महत्या को 'हत्या' मानते हुए कहता है - 'गुड न्यूज है सर.. न पुलिस को पता चला न जॉय के पेरेंट्स को..सब सोच रहे है सुसाइड है..... यह इंजीनियर बहुत चालक होते हैं सर। ऐसी कोई मशीन ही नही बनाई जो यहाँ (दिमाग) का प्रेशर चेक कर सके। बनाते तो पता चल जाता कि यह सुसाइड नहीं, मर्डर है सर...मर्डर।'' कहने को तो यह बहुत सामान्य संवाद लग सकता है लेकिन यह संवाद पारिवारिक, व्यवसायिक एवं शैक्षणिक संस्थानों के द्वारा उत्पन्न मानसिक दवाबों एवं उससे उपजे विकारों को नग्न करता है। भारतीय जीवन शैली में जबरदस्त शिफ्ट देखने को मिल रहा है। जो भारतीय संस्कृति मेल-मिलाप कहना होगा कि केवल सामाजिक जीवन ही नहीं बदला रहा बल्कि मानसिकता भी बदल रही है। लेकिन यह तय है कि ऐसी जीवन शैली और मानसिकता से भविष्य में डिप्रेशन और हिंसा के केस हमारे यहाँ बहुत तेजी से बढ़ने वाले है जिसे केवल अच्छे सामाजिक जीवन एवं योगाध्यात्म से ही दूर किया जा सकता है। भविष्य में योग और अध्यात्म जीवन का अभिन्न अंग बनने जा रहे हैं।

(डॉ दीपक शर्मा मोतीलाल नेहरू कॉलेज (सांध्य) दिल्ली में और डॉ. ऋतु कालिंदी कालेज दिल्ली में सहायक प्राध्यापक/प्राध्यापिका हैं)

भवानी प्रसाद मिश्र की कविताएं

इन सबका दुख गाओगे या नहीं

इस बार शुरू से धरती सूखी है
हवा भूखी है
वृक्ष पातहीन हैं
इस बार शुरू से ही नदियाँ क्षीण हैं,
पंछी दीन हैं
किसानों के चेहरे मलीन हैं

क्या करोगे इस बार
इन सबका दुख गाओगे या नहीं
पिछले बरस कुछ सरस भी था
इस बरस तो सरस कुछ नहीं दीखता
इस बार क्षीणता को
दीनता की मलीनता को ,
भूख को वाणी दो
उलट-पुलट की संभावना को पानी दो

पानी को क्या सूझी

मैं उस दिन
नदी के किनारे पर गया
तो क्या जाने
पानी को क्या सूझी
पानी ने मुझे
बूँद-बूँद पी लिया

और मैं
पिया जाकर पानी से
उसकी तरंगों में
नाचता रहा

रात-भर
लहरों के साथ-साथ
सितारों के इशारे
बाँचता रहा!

बूँद टपकी एक नभ से

बूँद टपकी एक नभ से
किसी ने झुककर झरोखे से
कि जैसे हँस दिया हो
हँस रही-सी आँख ने जैसे
किसी को कस दिया हो
ठगा-सा कोई किसी की
आँख देखे रह गया हो
उस बहुत से रूप को
रोमांच रो के सह गया हो

बूँद टपकी एक नभ से
और जैसे पथिक छू

मुस्कान चौंके और घूमे
आँख उसकी जिस तरह
हँसती हुई-सी आँख चूमे
उस तरह मैंने उठाई आँख
बादल फट गया था
चंद्र पर आता हुआ-सा
अभ्र थोड़ा हट गया था

बूँद टपकी एक नभ से
ये कि जैसे आँख मिलते ही
झरोखा बन्द हो ले
और नूपुर ध्वनि झमककर
जिस तरह द्रुत छन्द हो ले
उस तरह
बादल सिमटकर,
चंद्र पर छाए अचानक
और पानी के हजारों बूँद
तब आए अचानक

सागर से मिलकर जैसे

नदी खारी हो जाती है
तबीयत वैसे ही
भारी हो जाती है मेरी
सम्पन्नों से मिलकर

व्यक्ति से मिलने का
अनुभव नहीं होता
ऐसा नहीं लगता
धारा से धारा जुड़ी है
एक सुगंध
दूसरी सुगंध की ओर मुड़ी है

तो कहना चाहिए
सम्पन्न व्यक्ति
व्यक्ति नहीं है
वह सच्ची कोई अभिव्यक्ति
नहीं है

कई बातों का जमाव है
सही किसी भी
अस्तित्व का अभाव है
मैं उससे मिलकर
अस्तित्वहीन हो जाता हूँ

दीनता मेरी
बनावट का कोई तत्व नहीं है
फिर भी धनाढ्य से मिलकर
मैं दीन हो जाता हूँ

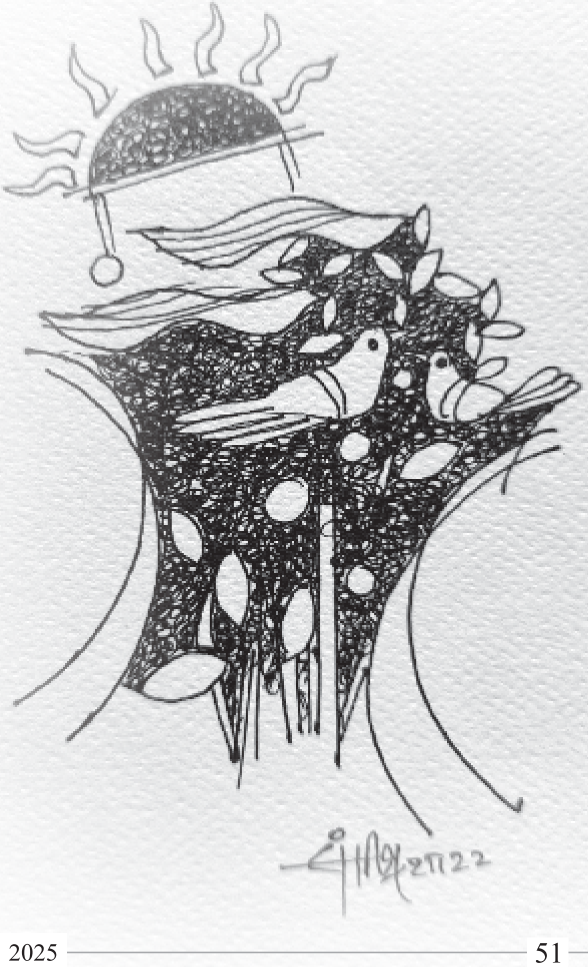

फोटो में गांधी

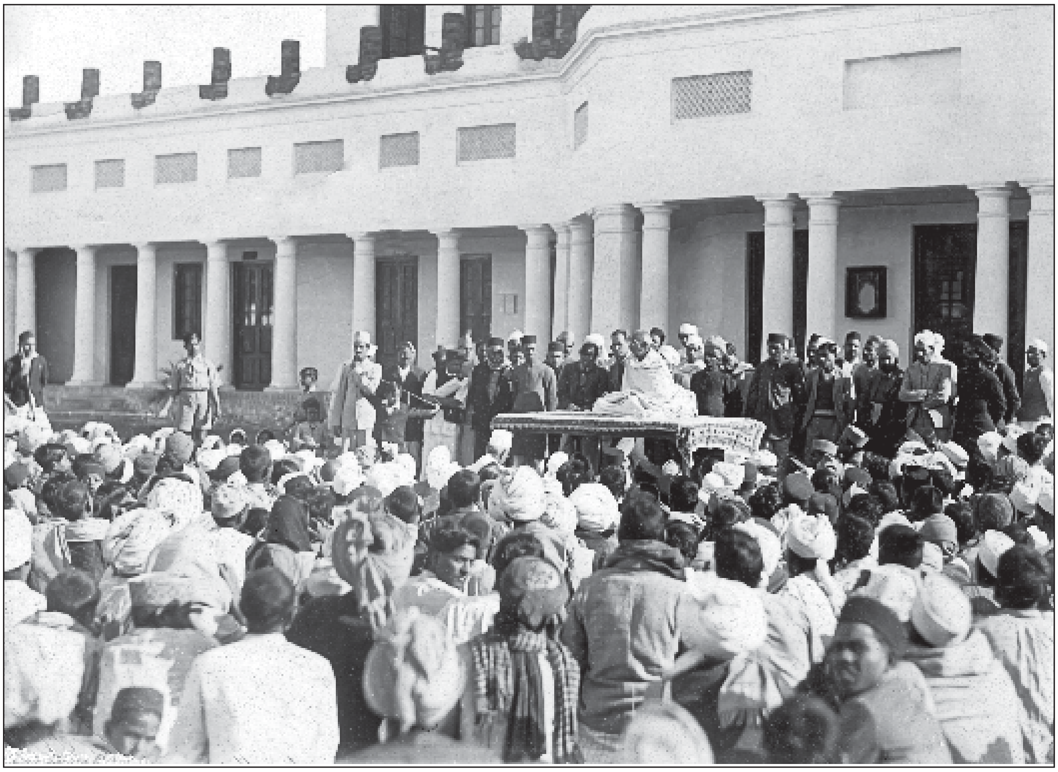

गांधी क्विज-13

प्रश्न 1. महात्मा गांधी की आत्मकथा, मूल रूप से निम्नलिखित किस पत्रिका में साप्ताहिक किस्तों में प्रकाशित हुई थी?

उत्तर- क. हरिजन
ख. इंडियन ओपिनियन
ग. नवजीवन
घ. सत्याग्रह पत्रिका

प्रश्न 2. सविनय अवज्ञा आंदोलन (Civil disobedience movement) महात्मा गांधी द्वारा किस वर्ष शुरू किया गया था?

उत्तर- क. 1928
ख. 1930
ग. 1932
घ. 1935

प्रश्न 3. 2 अक्टूबर को महात्मा गांधी के साथ किस महापुरुष की जयंती मनाई जाती है?

उत्तर- क. जे. बी. कृपलानी
ख. लाल बहादुर शास्त्री
ग. जवाहरलाल नेहरू
घ. अटल बिहारी वाजपेयी

प्रश्न 4. "इंडिया आफ्टर गांधी" पुस्तक किसने लिखी?

उत्तर- क. रोमिला थापर
ख. बिपन चंद्रा
ग. रामचन्द्र गुहा
घ. एकनाथ ईश्वरन

प्रश्न 5. मणि भवन गांधी संग्रहालय निम्नलिखित में से किस स्थान पर स्थित है?

उत्तर- क. नई दिल्ली
ख. मुंबई
ग. पुणे
घ. गुवाहाटी

प्रश्न 6. महात्मा गांधी को किस स्टेशन पर ट्रेन से बाहर फेंक दिया गया था?

उत्तर- क. पीटरमैरिट्सबर्ग रेलवे स्टेशन
ख. केपटाउन रेलवे स्टेशन
ग. जोहान्सबर्ग पार्क स्टेशन
घ. प्रिटोरिया रेलवे स्टेशन

प्रश्न 7. निम्नलिखित में से कौन महात्मा गांधी के राजनीतिक गुरु थे?

उत्तर- क. जवाहरलाल नेहरू
ख. गोपाल कृष्ण गोखले
ग. राजा राम मोहन राय
घ. स्वामी विवेकानंद

प्रश्न 8. पूना पेक्ट पर कब हस्ताक्षर किये गये?

उत्तर- क. 8 मार्च, 1931
ख. 24 सितम्बर 1932
ग. 15 अगस्त 1935
घ. 5 जनवरी 1937

प्रश्न 9. वरिष्ठ मंत्री स्टैफोर्ड क्रिप्स के डोमिनियन स्टेटस के प्रस्ताव (Cripps' offer) के बारे में गांधीजी का क्या कहना था?

उत्तर- क. ब्लैंक चेक
ख. पोस्ट-डेटेड चेक
ग. बचत खाता
घ. करेंसी नोट

प्रश्न 10. गांधी इरविन समझौता (Gandhi Irwin Pact) निम्नलिखित किससे संबंधित है?

उत्तर- क. असहयोग आन्दोलन का स्थगन
ख. भारत छोड़ो आंदोलन का स्थगन
ग. सविनय अवज्ञा आंदोलन का निलंबन
घ. उपवास का स्थगन

गांधी क्विज 12 के विजेता - अमला राय

ग्राम पोस्ट- सोनहरियां, तहसील -जमानियां जिला- गाजीपुर, उत्तरप्रदेश, पिन-232336

नोट: आप गांधी क्विज के उत्तर antimjangsds@gmail.com पर भेज सकते हैं।
प्रथम विजेता को उपहार स्वरूप गांधी साहित्य दिया जायेगा।

शेर और लड़का

प्रेमचंद

बच्चों, शेर तो शायद तुमने न देखा हो, लेकिन उसका नाम तो सुना ही होगा। शायद उसकी तस्वीर देखी हो और उसका हाल भी पढ़ा हो। शेर अकसर जंगलों और कछारों में रहता है। कभी-कभी वह उन जंगलों के आस-पास के गाँवों में आ जाता है, आदमी और जानवरों को उठा ले जाता है। कभी-कभी उन जानवरों को मारकर खा जाता है जो जंगलों में चरने जाया करते हैं। थोड़े दिनों की बात है कि एक गड़रिये का लड़का गाय-बैलों को लेकर जंगल में गया और उन्हें जंगल में छोड़कर आप एक झरने के किनारे मछलियों का शिकार खेलने लगा। जब शाम होने को आई तो उसने अपने जानवरों को इकट्ठा किया, मगर एक गाय का पता न था। उसने इधर-उधर दौड़-धूप की, मगर गाय का पता न चला। बेचारा बहुत घबराया। मालिक अब मुझे जीता न छोड़ेंगे। उस वक्त ढूंढने का मौका न था, क्योंकि जानवर फिर इधर-उधर चले जाते; इसलिए वह उन्हें लेकर घर लौटा और उन्हें बाड़े में बाँधकर, बिना किसी से कुछ कहे हुए गाय की तलाश में निकल पड़ा। उस छोटे लड़के की यह हिम्मत देखो; अँधेरा हो रहा है, चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ है, जंगल भाँय-भाँय कर रहा है. गीदड़ों का हौवाना सुनाई दे रहा है, पर वह बेखौफ जंगल में बढ़ा चला जाता है।

कुछ देर तक तो वह गाय को ढूंढता रहा, लेकिन जब और अँधेरा हो गया तो उसे डर मालूम होने लगा। जंगल में अच्छे-अच्छे आदमी डर जाते हैं, उस छोटे-से बच्चे का कहना ही क्या। मगर जाए कहाँ? जब कुछ न सूझी तो एक ऊंचे पेड़ पर चढ़ गया और उसी पर रात काटने की ठान ली। उसने पक्का इरादा कर लिया था कि बगैर गाय को लिए घर न लौटूंगा। दिन भर का थका-माँदा तो था, उसे जल्दी नींद आ गई। नींद चारपाई और बिछावन नहीं ढूँढती।

पकड़ने की कोशिश करता। कभी-कभी तो वह इतने नजदीक आ जाता कि लड़का जोर से चिल्ला उठता।

रात ज्यों-त्यों करके कटी, सबेरा हुआ। लड़के को कुछ भरोसा हुआ कि शायद शेर उसे छोड़कर चला जाए। मगर शेर ने हिलने का नाम तक न लिया। सारे दिन वह उसी पेड़ के नीचे बैठा रहा। शिकार सामने देखकर वह कहाँ जाता। पेड़ पर बैठे-बैठे लड़के की देह अकड़ गई थी, भूख के मारे बुरा हाल था, मगर शेर था कि वहाँ से जौ भर भी न हटता था। उस जगह से थोड़ी दूर पर एक छोटा-सा झरना था। शेर कभी-कभी उस तरफ ताकने लगता था। लड़के ने सोचा कि शेर प्यासा है। उसे कुछ आस बंधी कि ज्यों ही वह पानी पीने जाएगा, मैं भी यहाँ से खिसक चलूँगा। आखिर शेर उधर चला। लड़का पेड़ पर से उतरने की फिक्र कर ही रहा था कि शेर पानी पीकर लौट आया। शायद उसने भी लड़के का मतलब समझ लिया था। वह आते ही इतने जोर से गरजा और ऐसा उछला कि लड़के के हाथ-पाँव ढीले पड़ गये, जैसे वह नीचे गिरा जा रहा हो। मालूम होता था, हाथ-पाँव पेट में घुसे जा रहे हैं। ज्यों-त्यों करके वह दिन भी बीत गया। ज्यों-ज्यों रात होती जाती थी, शेर की भूख भी तेज होती जाती थी। शायद उसे यह सोच-सोचकर गुस्सा आ रहा था कि खाने की चीज सामने रखी है और मैं दो दिन से भूखा बैठा हूँ। क्या आज भी एकादशी रहेगी? वह रात भी उसे ताकते ही बीत गई।

तीसरा दिन भी निकल आया। मारे भूख के उसकी

अचानक पेड़ इतनी जोर से हिलने लगा कि उसकी नींद खुल गई। वह गिरते-गिरते बच गया। सोचने लगा, पेड़ कौन हिला रहा है? आँखें मलकर नीचे की तरफ देखा तो उसके रोएँ खड़े हो गये। एक शेर पेड़ के नीचे खड़ा उसकी तरफ ललचाई हुई आँखों से ताक रहा था। उसकी जान सूख गई। वह दोनों हाथों से डाल से चिमट गया। नींद भाग गई।

कई घण्टे गुजर गये, पर शेर वहाँ से जरा भी न हिला। वह बार-बार गुर्राता और उछल-उछलकर लड़के को

आँखों में तितलियाँ-सी उड़ने लगीं। डाल पर बैठना भी उसे मुश्किल मालूम होता था। कभी-कभी तो उसके जी में आता कि शेर मुझे पकड़ ले और खा जाए। उसने हाथ जोड़कर ईश्वर से विनय की, भगवान, क्या तुम मुझ गरीब पर दया न करोगे?

शेर को भी थकावट मालूम हो रही थी। बैठे-बैठे उसका जी ऊब गया । वह चाहता था किसी तरह जल्दी से शिकार मिल जाए। लड़के ने इधर-उधर बहुत निगाह दौड़ाई कि कोई नजर आ जाए, मगर कोई नजर न आया। तब वह चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा। मगर वहाँ उसका रोना कौन सुनता था।

आखिर उसे एक तदबीर सूझी। वह पेड़ की फुनगी पर चढ़ गया और अपनी धोती खोलकर उसे हवा में उड़ाने लगा कि शायद किसी शिकारी की नजर पड़ जाए। एकाएक वह खुशी से उछल पड़ा। उसकी सारी भूख, सारी कमजोरी गायब हो गई। कई आदमी झरने के पास खड़े उस उड़ती हुई झण्डी को देख रहे थे। शायद उन्हें अचम्भा हो रहा था कि जंगल के इस पेड़ पर झण्डी कहाँ से आई। लड़के ने उन आदमियों को गिना एक, दो, तीन, चार।

जिस पेड़ पर लड़का बैठा था, वहाँ की जमीन कुछ नीची थी। उसे ख्याल आया कि अगर वे लोग मुझे देख भी लें तो उनको यह कैसे मालूम होगा कि इसके नीचे तीन दिन का भूखा शेर बैठा हुआ है। अगर मैं उन्हें होशियार न कर दूँ तो यह दुष्ट किसी-न-किसी को जरूर चट कर जाएगा। यह सोचकर वह पूरी ताकत से चिल्लाने लगा। उसकी आवाज सुनते ही वे लोग रुक गये और अपनी-अपनी बन्दूकें सम्हालकर उसकी तरफ ताकने लगे।

लड़के ने चिल्लाकर कहा--होशियार रहो! होशियार रहो! इस पेड़ के नीचे एक शेर बैठा हुआ है!

शेर का नाम सुनते ही वे लोग सँभल गये, चटपट बन्दूकों में गोलियाँ भरी और चौकन्ने होकर आगे बढ़ने लगे।

शेर को क्या ख़बर कि नीचे क्या हो रहा है। वह तो अपने शिकार की ताक में घात लगाये बैठा था। यकायक पैरों की आहट पाते ही वह चौंक उठा और उन चारों आदमियों को एक टोले की आड़ में देखा। फिर क्या कहना था। उसे मुँह माँगी मुराद मिली। भूख में सब्र कहाँ। वह इतने जोर से गरजा कि सारा जंगल हिल गया और उन आदमियों की तरफ जोर से जस्त मारी। मगर वे लोग पहिले ही से तैयार थे। चारों ने एक साथ गोली चलाई। दन! दन! दन! दन! आवाज हुई। चिड़ियाँ पेड़ों से उड़-उड़कर भागने लगीं । लड़के ने नीचे देखा, शेर जमीन पर गिर पड़ा था। वह एक बार फिर उछला और फिर गिर पड़ा। फिर वह हिला तक नहीं।

लड़के की खुशी का क्या पूछना। भूख-प्यास का नाम तक न था। चटपट पेड़ से उतरा तो देखा सामने उसका मालिक खड़ा है। वह रोता हुआ उसके पैरों पर गिर पड़ा। मालिक ने उसे उठाकर छाती से लगा लिया और बोला--क्या तू तीन दिन से इसी पेड़ पर था?

लड़के ने कहा--हाँ, उतरता कैसे? शेर तो नीचे बैठा हुआ था।

मालिक--हमने तो समझा था कि किसी शेर ने तुझे मार कर खा लिया। हम चारों आदमी तीन दिन से तुझे ढूंढ रहे हैं। तूने हमसे कहा तक नहीं और निकल खड़ा हुआ।

लड़का-- मैं डरता था, गाय जो खोई थी ।

मालिक--अरे पागल, गाय तो उसी दिन आप ही आप चली आई थी।

भूख-प्यास से शक्ति तक न रहने पर भी लड़का हँस पड़ा।

किताब

राजेंद्र प्रसाद : देशरत्न से भारतरत्न बनने की दास्तान

डॉ हरेराम पाठक

भारत के प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डॉ राजेंद्र प्रसाद पर हिंदी के वरिष्ठ आलोचक प्रो. श्रीभगवान सिंह द्वारा लिखित पुस्तक पढ़ने पर कई महत्वपूर्ण बातें जो पृष्ठभूमि में पड़ी हुई थीं आज स्पष्ट होने लगी हैं। एक बेचैनी – सा अनुभव कर रहा हूं कि इस पुस्तक को पढ़ने के बाद इसके संबंध में कैसे मैं अपना विचार अभिव्यक्त करूं ? इतनी बड़ी शख्सियत पर निष्पक्ष होकर कुछ लिखना आज के समय में बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है। कारण यह है कि आज हिंदी समाज और विशेषकर हिंदी के लेखक इतने गुटों में विभक्त हैं कि अपने से अलग विचार रखने वाले को वे विचारक मानते ही नहीं हैं। इसमें भी हिंदी के आलोचक की तो बात ही और है। बहरहाल, इस पुस्तक से इतना तो पता चल ही जाता है कि आज हम जिस साम्प्रदायिक असहिष्णुता के दौर से गुजर रहे हैं उसका बीजारोपण ब्रिटिशकाल में ही हो गया था। कुछ ब्रिटिश, कुछ गांधी बाबा, कुछ नेहरू जी तो कुछ आंबेडकर जी इन परिस्थितियों के जन्मदाता किसी न किसी प्रकार से रहे हैं। गांधीजी की वर्चस्ववादी राजनीति कहीं – कहीं फलदायी तो कहीं– कहीं इतनी दुराग्रह प्रेरित रही है कि किसी न किसी रूप में उसकी सजा आज भी यह देश भुगत रहा है। नेहरू जी जैसा कद्दावर नेता भी अपने अहंकार में ऐसा कैद था कि राजेंद्र बाबू और आंबेडकर साहब से उनकी टकराहट कई मोर्चों पर होती रही। सरदार पटेल और नेहरू के बीच की वैचारिक भिड़ंत जग जाहिर है। उस समय की राजनीति को समझे बिना आज की राजनीति को हम नहीं समझ सकते क्योंकि आज की राजनीति भी उसी समय की खोदी गई नींव पर बनती चली जा रही है। प्रो श्रीभगवान सिंह ने पूरे ऐतिहासिक विवरण के साथ राजेंद्र बाबू की जीवनी के बहाने उस समय के पूरे राजनीतिक परिदृश्य को प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यहां कुछ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक मुद्दों की ओर मैं ध्यान दिलाना चाहूंगा जिनके उल्लेख से तत्कालीन राजनीति के समतल एवं खुरदुरे पहलुओं को जाना जा सकता है। संविधान के ड्राफ्टिंग कमिटी के अध्यक्ष बनने के बाद डॉ बाबा साहब आंबेडकर ने संविधान प्रारूपों में ग्राम– गणराज्य की अवधारणा को खारिज करते हुए मजबूत केंद्र की वकालत की थी जो राजेंद्र बाबू और गांधीजी के विचारों के विरुद्ध था।

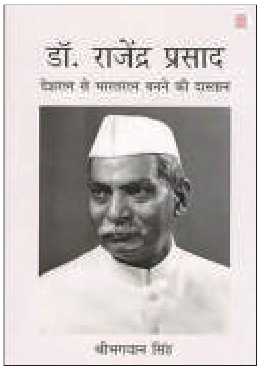

प्रकाशक
सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

लेखक
डॉ भगवान सिंह

मूल्य
550 रुपये

इसके अतिरिक्त और भी लोग बाबा साहब के विचारों से असहमत थे। उन्होंने गांव के लोगों को स्थानीयता के नादान, अज्ञान, संकीर्ण दिमाग वाला आदि-आदि कह दिया था। इसका घोर विरोध हुआ और डॉ आंबेडकर के न चाहते हुए भी संविधान में पंचायती राज्य व्यवस्था को राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अंतर्गत समाविष्ट कर लिया गया। प्रो श्रीभगवान सिंह लिखते हैं– ''आज के राजनीतिक माहौल में डॉ आंबेडकर को संविधान का पिता या निर्माता कहने का फैशन चल पड़ा है, किंतु इस संबंध में डॉ आंबेडकर ने संविधान सभा में नवंबर 1949 में समापन भाषण देते हुए जो कहा था, उसे हमें स्मरण कर लेना चाहिए। उनके उस भाषण के कुछ अंश यहां उद्धृत हैं – जो श्रेय मुझे दिया गया है, वास्तव में उसका हकदार मैं नहीं हूं। यह श्रेय संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार सर बी एन राव को जाता है जिन्होंने प्रारूप समिति के विचारार्थ संविधान का कच्चा प्रारूप तैयार किया। ''डॉ अंबेडकर का यह भाषण बहुत लंबा है जिसे पांच शीर्षकों में बांटा गया है। आंबेडकर जी के विचारों पर अपनी टिप्पणी देते हुए समष्टि रूप से प्रो श्रीभगवान सिंह लिखते हैं– ''इन सारे तथ्यों को ध्यान में रखते हुए वाजिब यही होगा कि वर्तमान समय में दलित समुदाय का 'वोट हथियाओ' की नियत से 'संविधान के पिता डॉ आंबेडकर' या 'संविधान निर्माता डॉ आंबेडकर' या फिर 'जो संविधान डॉ आंबेडकर ने हमें दिया' जैसी चलाई जा रही जुमलेबाजी बंद होनी चाहिए, क्योंकि यह न केवल अर्द्धसत्य है, बल्कि अप्रजातंत्रिक तथा व्यक्तिवादी मनोवृति का भी पोषक है और डॉ आंबेडकर के उपरोक्त सत्य वचनों का भी प्रत्याख्यान है।'' (पृष्ठ 185)

प्रो श्रीभगवान सिंह अपनी बेबाक समीक्षा के लिए हिंदी साहित्य में प्रमुख स्थान रखते हैं। राजनीति में वे गहरी रुचि रखते हैं और निर्भीक कथन उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। वे हमें इतिहास एवं राजनीति की प्रामाणिक जानकारी देने के लिए सदैव प्रतिबद्ध हैं। डॉ राजेंद्र प्रसाद देश के प्रथम राष्ट्रपति बन तो गए पर पंडित जवाहर लाल नेहरू की इच्छा थी कि राजगोपालाचारी जी को राष्ट्रपति बनाया जाए। इसके लिए नेहरू जी ने राजेंद्र बाबू के पास स्वयं एक पत्र भी लिखा था। उन्होंने कारण यह बताया था कि राजगोपालाचारी गवर्नर जनरल के पद पर हैं अत: उन्हें राष्ट्रपति का पद संभालने में आसानी होगी। पर नेहरू जी का यह तर्क काफी कमजोर था और जनमत की इच्छा के विरुद्ध था। सन् 1942 के आन्दोलन को लेकर कांग्रेस पार्टी में राजगोपालाचारी के प्रति लोगों में काफी असंतोष था। 85 प्रतिशत कांग्रेस के सदस्य राजगोपालाचारी के विरोध में थे। ये सभी लोग राजेंद्र बाबू को राष्ट्रपति के रूप में देखना चाहते थे। उधर नेहरू जी के बार -बार दबाव देने पर राजेंद्र बाबू ने यह मान लिया था कि वे राष्ट्रपति पद के लिए उम्मीदवार नहीं बनेंगे । परंतु यह जनमत की अवहेलना थी। महावीर त्यागी, जो संविधान सभा के सदस्य एवं नेहरू के मंत्री परिषद में मंत्री थे, ने 'भारत के प्रथम राष्ट्रपति' शीर्षक आलेख में लिखा है कि – ''यह सुनकर मैंने गुस्से (बनावटी) से चिल्लाकर कहा, राजेंद्र बाबू, याद रखना मैं भी कांग्रेस में एक अव्वल नंबर का गुंडा हूं। जिस तरह से तुमने हमारे साथियों के साथ विश्वासघात किया है मैं उसका बदला लिए बिना नहीं छोड़ूंगा। मैं चौराहे पर तुम्हारी टोपी उछालूंगा, बिहारी बुद्धू कहीं के।''

जाहिर है, राजेंद्र बाबू को इतनी आत्मीयता से लोग चाहते थे। अंत में सबकी सहमति के सामने नेहरू जी को झुकना पड़ा। राजेंद्र बाबू सर्व सम्मति से संविधान सभा द्वारा राष्ट्रपति चुन लिए गए। लेकिन एक बात जो सदा सर्वदा के लिए रह गई वह यह है कि राजेंद्र बाबू और नेहरू जी के बीच जगह-जगह मतभेद होते रहे। राजेंद्र बाबू के उन्मुक्त विचारों पर नेहरू जी हावी होते रहे पर राजेंद्र बाबू अपने सात्विक संकल्प से अपने विचारों पर हमेशा अडिग रहे। लेखक श्रीभगवान सिंह ने 'प्रथम राष्ट्रपति' शीर्षक में विस्तार से प्रामाणिक तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए नेहरू जी एवं राजेंद्र बाबू के बीच के संबंधों को बड़ी ही बारीकी से देखा- परखा है, और उसका समुचित विश्लेषण किया है।

'राष्ट्रपति बनाम प्रधानमंत्री' इस पुस्तक का एक ऐसा अध्याय है जिसमें राजेंद्र बाबू एवं नेहरू जी के मतभेदों/मनभेदों का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया गया है। नेहरू जी ने कई स्थलों पर राजेंद्र बाबू की भूरी-भूरी प्रशंसा की है। उस जमाने के नेताओं में कम-से-कम इतनी व्यवहार कुशलता और शालीनता तो थी ही, पर आज की राजनीति तो गाली-गलौज और अभद्रता की सीमा पार कर चुकी है। लेकिन यह हमारे देश का दुर्भाग्य है कि लोकतंत्र के नाम पर अलोकतांत्रिक और संविधान के नाम पर

असंवैधानिक कार्य व्यापार करना या राजनीति खेलना हमारा चरित्र बनता जा रहा है। प्रो श्रीभगवान सिंह लिखते हैं– ''राजेंद्र बाबू को राष्ट्रपति बने एक साल भी नहीं हुआ था कि दोनों के बीच असहमति का पहला मुद्दा आ पड़ा 15 दिसंबर 1950 को जब मुंबई में सरदार पटेल का अकस्मात हृदयाघात से निधन हो गया। ''राजेंद्र बाबू सरदार के दाह संस्कार में जाने के लिए तैयार थे, पर नेहरू जी की सहमति नहीं थी। नेहरू जी की सहमति का न होना कई तरह की शंकाओं को जन्म देता है। श्रीभगवान सिंह ने नेहरू जी की इस मनोवृति का गहन विश्लेषण विभिन्न तथ्यों के आधार पर किया है पर सबका निचोड़ यही है कि नेहरू जी सरदार पटेल को लेकर अंत तक कुंठाग्रस्त बने रहे। राजेंद्र बाबू नेहरू जी की इस मनोवृति को भलीभांति परख चुके थे। अत: नेहरू जी के मना करने पर भी वे सरदार पटेल की अंत्येष्टि में जा पहुंचे।

राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच मतभेद का एक बड़ा मुद्दा सोमनाथ मंदिर के उद्‌घाटन के समय देखा जा सकता है। उस उदघाटन में नेहरू जी राजेंद्र बाबू को जाने के लिए मना कर चुके थे। फिर भी राजेंद्र बाबू गए। नेहरू जी का तर्क यह था कि धर्म निरपेक्ष राज्य के प्रमुख को किसी धार्मिक समारोह में शामिल होना उचित नहीं है। लेकिन नेहरू जी स्वयं कई मुस्लिम एवं ईसाई धर्म स्थलों में पहले जा चुके थे। प्रो. श्रीभगवान सिंह का उद्देश्य क्या रहा होगा इस पुस्तक को लिखने के पीछे, यह बात किसी भी व्यक्ति के मन में हलचल मचा सकती है। इसी के साथ एक प्रश्न यह भी जुड़ जाता है कि एक आलोचक का दायित्व क्या होता है ? आज कल कितनी ऐसी आलोचनाएं हैं जो निष्पक्ष रूप से लिखी जा रही हैं। प्रो श्रीभगवान सिंह इस बात को गहराई से महसूस करते हैं कि हिंदी के एक आलोचक होने के नाते इतिहास की सच्चाई से भावी पीढ़ी को अवगत कराना उनका धर्म है। उन्होंने आरंभ से आज तक आलोचना में सत्य की स्थापना पर सदैव बल दिया है। उन्हें यह बात अखरती रही है कि राजेंद्र बाबू जैसे मेधावी, सत्यनिष्ठ एवं राष्ट्रवादी व्यक्तित्व को राजनीति के अधिकांश निर्णयों में किनारे रखने का प्रयास क्यों किया जाता रहा? इस पुस्तक में राजेंद्र बाबू का जय गान नहीं किया गया है, यहां तो मात्र उन स्थितियों की चर्चा की गई है जिससे भारतीय राजनीति कलंकित होती है। डॉ राजेंद्र प्रसाद को 'भारत रत्न' की उपाधि प्रदान करते हुए डॉ राधाकृष्णन ने जो उद्‌गार व्यक्त किए थे उससे उनकी महानता के बहुकोणीय आयाम का पता चलता है – ''देश के लिए, स्मरणीय सेवाओं के लिए उन्होंने हमारे सामने जो उदाहरण प्रस्तुत किए उनके लिए उन्हें 'भारत रत्न' के रूप में उच्च उपाधि स्वीकार करने का उनसे अनुरोध करना मेरा सौभाग्य है।'' (पृष्ठ 263)

'भारत रत्न' राजेंद्र बाबू भाषा और साहित्य के प्रति भी काफी समर्पित व्यक्तित्व थे। भारतीय संविधान को हिंदी में लिखे जाने के वो प्रबल समर्थक थे। हिंदी– उर्दू विवाद को मिटाते हुए उन्होंने कहा था कि हिंदी और उर्दू दो भिन्न भाषाएं नहीं हैं। (पृष्ट 291) इस पुस्तक में खंड 2 के तहत तीन निबंध हैं–राष्ट्रभाषा–विमर्श, साहित्य– विमर्श और शिक्षा–विमर्श; इन तीनों आलेखों में भाषा, लिपि एवं साहित्य पर गंभीर चर्चा है जिससे राजेंद्र बाबू की साहित्यिक अभिरुचि का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

इस पुस्तक की सबसे बड़ी उपलब्धि है कि यहां लेखक ने हिंदू कोड बिल पर राजेंद्र बाबू द्वारा नेहरू जी को लिखे दो पत्रों को उसी रूप में प्रस्तुत किया है। इन दोनों पत्रों को सबको पढ़ना चाहिए। दूसरी बात यह है कि राजेंद्र बाबू कि हिंदी भाषा एवं साहित्य संबंधी मान्यताएं बहुत स्पष्ट हैं। उन्होंने भाषा और साहित्य तथा कलाओं के विकास के लिए बहुत तार्किक एवं सार्थक संवाद किए। उनका मत स्पष्ट था। अब तक एक राष्ट्रीय भाषा की स्थापना के लिए वर्षो से जो विवाद चल रहा है उसके जन्मदाता नेहरू सरकार तो है ही आज तक की सरकारें भी वही खेल खेलती आ रही हैं जिससे वे सबसे अच्छे बनी रहें और उनकी चुनावी जीत की दूकान चलती रहे। बहुत सी विवादास्पद बातें हैं जो इस पुस्तक में इसलिए उठाई गई हैं ताकि लोग हकीकत से अवगत होकर उसके समाधान के लिए आगे बढ़ें क्योंकि उस समय की बोई गई ये समस्याएं आज भी हमारे समाज एवं देश को तोड़ने तथा व्यक्ति–व्यक्ति के बीच दरार पैदा करने में अहम भूमिका निभा रही हैं।

आशा है, यह पुस्तक व्यापक रूप से पढ़ी और समझी जाएगी।

ईमेल – hrpathak9@gmail.com

गतिविधियाँ

गांधी समर स्कूल के समापन कार्यक्रम में रचनात्मक प्रतिभा का प्रदर्शन

गांधी दर्शन, राजघाट में 29 मई, 2025 को आयोजित आठ दिवसीय गांधी समर स्कूल के समापन कार्यक्रम में प्रतिभाओं का एक जीवंत सांस्कृतिक प्रदर्शन किया गया। प्रतिभागियों ने पर्यावरण संरक्षण, आतंकवाद और युवाओं पर डिजिटल प्रभाव जैसे प्रासंगिक समकालीन मुद्दों पर नृत्य, मूक अभिनय (माइम) और नाट्य प्रस्तुतियों से दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया।

इस अवसर पर उपस्थित प्रतिष्ठित अतिथियों में प्रसिद्ध नृत्यांगना सुश्री शैरोन लोवेन; भारत में कोलंबिया दूतावास के कार्यवाहक राजदूत (अंतरिम) एवं मिनिस्टर काउंसलर श्री जुआन कार्लोस; अखिल भारतीय मद्यनिषेध परिषद के अध्यक्ष एवं महात्मा गांधी समाधि, राजघाट के सचिव श्री रजनीश कुमार; भारत में रूसी संघ के दूतावास की काउंसलर (संस्कृति, शिक्षा, खेल) सुश्री यूलिया आर्यवा; और सुश्री नलिनी दीक्षित शामिल थीं।

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के निदेशक (प्रभारी) श्री संजीत कुमार ने सम्मानित अतिथियों का स्वागत किया। गणमान्य व्यक्तियों ने समर स्कूल के प्रशिक्षकों को भी सम्मानित किया। अतिथिगण कार्यक्रम से बच्चों की कृतियों की एक प्रदर्शनी देखकर विशेष रूप से प्रभावित हुए, जिसमें मिट्टी की कलाकृतियों और जनजातीय चित्रों से लेकर कॉमिक लिपियों के माध्यम से प्रस्तुत कहानियाँ शामिल थीं।

कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण आकर्षण गांधी समर स्कूल के समाचार पत्र 'सत्य वाणी' का विमोचन था। बच्चों द्वारा तैयार इस समाचार पत्र में समिति के उपाध्यक्ष श्री विजय गोयल का एक साक्षात्कार और शिविर से संबंधित अन्य समाचार शामिल थे। उपाध्यक्ष का एक संदेश भी प्रतिभागियों को पढ़कर सुनाया गया।

समर स्कूल का उद्देश्य लगभग 150 प्रतिभागी बच्चों में नवीन प्रयोगों और रचनात्मक कौशल-निर्माण गतिविधियों के माध्यम से गांधीवादी मूल्यों को स्थापित करना था। एक लाइव रेडियो पॉडकास्ट भी कार्यक्रम की एक और आकर्षक विशेषता थी।

समर स्कूल के दौरान प्रदान की जाने वाली विविध गतिविधियों में समाचार पत्र रिपोर्टिंग, फिल्म निर्माण, रेडियो, सुलेख, मूक अभिनय (माइम), रंगमंच, नृत्य, कॉमिक्स, जनजातीय कला, मिट्टी के बर्तन बनाना और

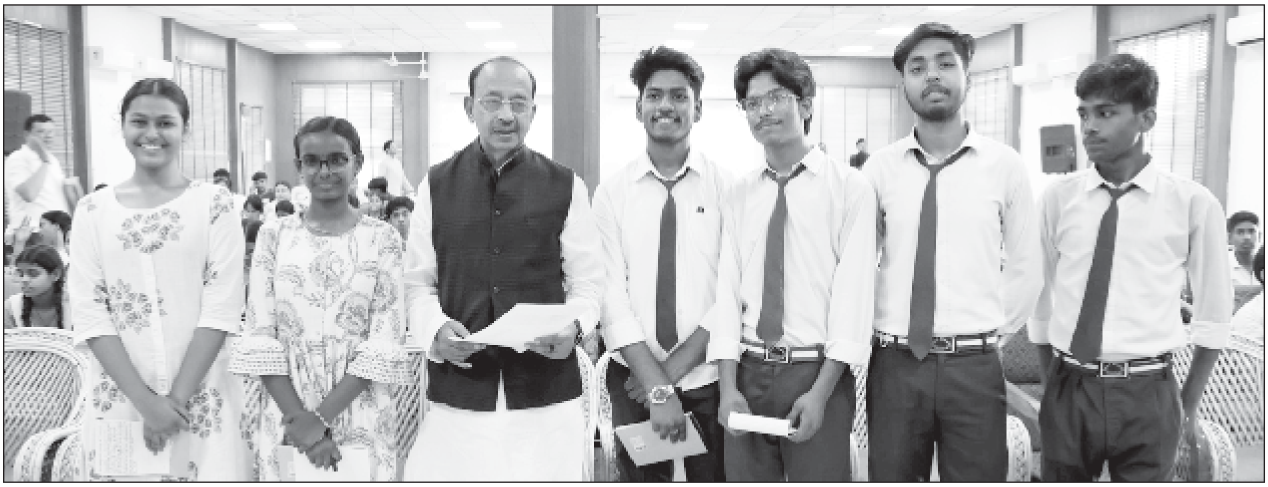

संगीत शामिल थे। इन कौशल-आधारित पहलों ने, अन्य बाल-केंद्रित कार्यक्रमों के साथ, छात्रों में विभिन्न क्षमताओं के विकास को बढ़ावा दिया।

इस अवसर पर बोलते हुए, श्री संजीत कुमार ने जीवन कौशल को शिविर का एक प्रमुख घटक बताया। प्रत्येक सुबह, बच्चों को महात्मा गांधी के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर शिक्षित किया जाता था ताकि उन्हें उनके भविष्य के लिए तैयार करने में मदद मिल सके।

श्री संजीत कुमार ने गणमान्य व्यक्तियों के साथ शिविर के संसाधन व्यक्तियों और प्रशिक्षकों को भी सम्मानित किया। इनमें शामिल थे: सुश्री शुभांगी सिंह (नृत्य – फ्यूजन); श्री हिमांशु कुमार (संगीत); श्री स्वपन सरकार (मूक अभिनय); सुश्री अरुंधति घोष (मेकअप कलाकार); सुश्री सोनिया दास और श्री लक्ष्य (रंगमंच); श्री शिवदत्त गौतम (कॉमिक स्क्रिप्ट); डॉ. सुरेश चंद्र (रेडियो जॉकी); सुश्री लेखा सुभरवाल (जनजातीय कला); सुश्री मिहिका शर्मा (सुलेख); सुश्री रेनू पुहार (क्ले आर्ट); डॉ. रजत अभिनव (फिल्म निर्माण/फोटोग्राफी); और डॉ. वेदभ्यास कुंडू, कार्यक्रम अधिकारी जीएसडीएस, और टीम (समाचार पत्र)।

नामीबिया के सैन्य अधिकारियों ने गांधीजी से ली प्रेरणा

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के उपाध्यक्ष श्री विजय गोयल ने 9 जून 2025 को गांधी स्मृति में नामीबियाई वायुसेना के कमांडर एयर वाइस मार्शल श्री टेओफिलस शेंडे का स्वागत किया और उन्हें गांधी चरखा तथा महात्मा गांधी की आत्मकथा भेंट की। एयर वाइस मार्शल श्री टेओफिलस शेंडे ने महात्मा गांधी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए शहीद स्तंभ पर पुष्पांजलि अर्पित की। निदेशक (प्रभारी) श्री संजीत कुमार ने भी महात्मा गांधी के कक्ष में प्रतिनिधिमंडल से भेंट की और उनका स्वागत किया। इस प्रतिनिधिमंडल में ग्रुप कैप्टन श्री पैट्रिक सिल्वानो वान विक, विंग कमांडर एलियासर नाधिपीटे अमबाम्बी, कैप्टन (नेवी) एल.के. कांगेन्डजेला (नामीबिया गणराज्य के उच्चायोग में रक्षा सलाहकार) तथा भारतीय वायुसेना से एयर कमांडर विक्रम गोविंद भी शामिल थे।

जिम्बाब्वे के सांसद पहुंचे गांधी स्मृति

11 जून 2025 को गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के माननीय उपाध्यक्ष श्री विजय गोयल ने जिम्बाब्वे से आए सात-सदस्यीय संसदीय प्रतिनिधिमंडल का गांधी स्मृति में स्वागत किया। इस प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व माननीय श्री सुपा कॉलिन्स मंडीवानजिरा कर रहे थे, जो न्यांगा साउथ निर्वाचन क्षेत्र से सांसद और संसद की प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा पर पोर्टफोलियो समिति के अध्यक्ष हैं।

उन्होंने इतिहास, संस्कृति और खेल जैसे विषयों पर एक सार्थक चर्चा की।

प्रतिनिधिमंडल में श्री ओफियास मुराम्बीवा, सुश्री बारबरा टिनोटेंडा थॉम्पसन, श्री विवियन चिटिम्बे, श्री थॉमस मुवोडजेरी, श्री पेंसेल मारुंगा और सुश्री प्रेशियस सिबोंगिले म्टेटवा शामिल थे। उन्होंने गांधी स्मृति संग्रहालय का दौरा किया और शहीद स्तंभ पर श्रद्धांजलि अर्पित की।

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली

‘अंतिम जन’ मासिक पत्रिका

(सदस्यता प्रपत्र)

मैं गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति द्वारा प्रकाशित अंतिम जन मासिक पत्रिका, (हिन्दी) का/की ग्राहक ....वर्ष/वर्षों के लिये बनना चाहता/चाहती हूँ।

	वर्ष	रुपये		वर्ष	रुपये
[ ]	एक प्रति शुल्क	20/-	[ ]	दो वर्ष का शुल्क	400/-
[ ]	वार्षिक शुल्क	200/-	[ ]	तीन वर्ष का शुल्क	500/-

.... बैंक चेक संख्या/डिमान्ड ड्राफ्ट संख्या ....

दिनांक .... राशि .... Director, Gandhi Smriti & Darshan Samiti, New Delhi में देय, संलग्न है।

ग्राहक का नाम (स्पष्ट अक्षरों में): ....

व्यवसाय : ....

संस्थान : ....

पता : ....

....

पिन कोड : .... राज्य : ....

दूरभाष (कार्यालय) .... निवास .... मोबाईल..............................

ई मेल : ....

हस्ताक्षर ....

कृपया इस प्रोफॉर्मा को भरकर (शुल्क) राशि (चेक/ड्राफ्ट) सहित निम्नलिखित पते पर भेजें :

प्रधान संपादक

‘अंतिम जन’ मासिक पत्रिका

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली - 110002

आप हमसे संपर्क कर सकते हैं :- दूरभाष : 011-23392796

ई मेल : antimjangsds@gmail.com, 2010gsds@gmail.com

अगर आप ‘अंतिम जन’ पत्रिका के नियमित पाठक बनना चाहते हैं तो अकाउंट में पेमेंट कर भुगतान की प्रति या स्क्रीनशॉट और अपना पत्राचार का साफ अक्षरों में पता, पिनकोड, मोबाईल नंबर, ईमेल आईडी सहित भेजें।

Name – Gandhi Smriti & Darshan Samiti
A/c No. - 90432010114219
IFSC Code- CNRB0019043
Bank – Canara Bank
Branch – Khan Market, New Delhi-110003

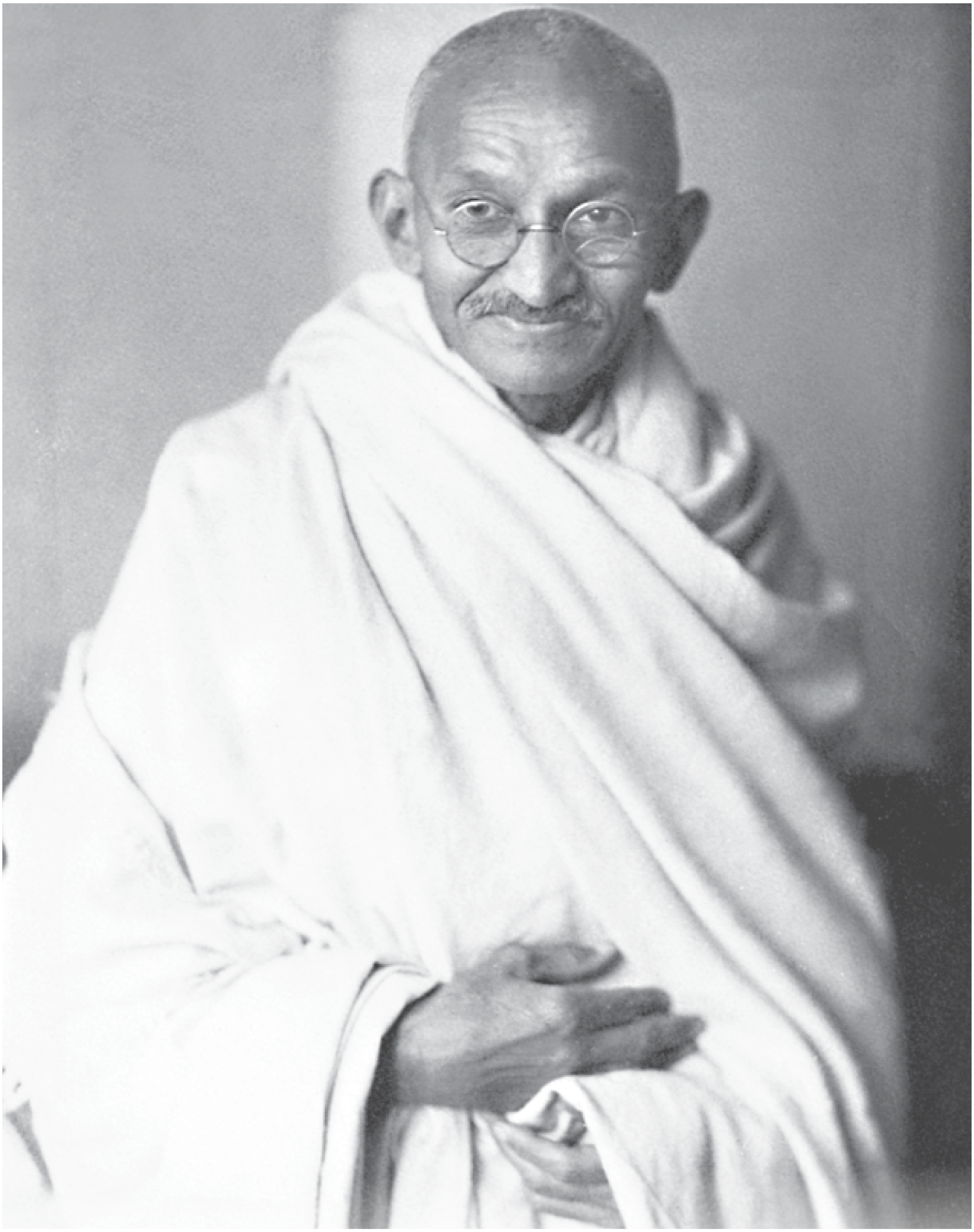

मैं उस रोशनी के लिए प्रार्थना कर रहा हूँ जो हमारे चारों और व्याप्त अंधकार को मिटा दे।
जिन्हें अहिंसा की जीवन्तता में आस्था है वे आएं और मेरे साथ इस प्रार्थना में शामिल हो।

मो.क.गांधी

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति

हमारे आकर्षण

गांधी स्मृति म्यूजियम (तीस जनवरी मार्ग)

* गांधी स्मृति म्यूजियम
* डॉल म्यूज़ियम
* शहीद स्तंभ
* मल्टीमीडिया प्रदर्शनी
* महात्मा गांधी के पदचिन्ह
* महात्मा गांधी का कक्ष
* महात्मा गांधी की प्रतिमा
* वर्ल्ड पीस गोंग
* डिजिटल सिग्नेचर (रोबोटिक)

गांधी दर्शन (राजघाट)

* गांधी दर्शन म्यूजियम
* क्ले मॉडल प्रदर्शनी
* गांधीजी को समर्पित रेल कोच प्रदर्शनी
* गेस्ट हाउस और डॉरमेट्री (200 लोगों के लिये)
* सेमीनार हॉल (150 लोगों के लिये)
* कॉन्फ्रेंस हॉल (300 लोगों के लिये)
* प्रशिक्षण हॉलः (80 लोगों के लिये)
* ओपन थियेटर
* राष्ट्रीय स्वच्छता केन्द्र
* गेस्ट हाउस और डॉरमेट्री
* गांधी दर्शन आर्ट गैलरी

प्रवेश निःशुल्क (प्रातः 10 बजे से सायंः 6.30 बजे तक), सोमवार अवकाश

हॉल, कमरों एवं आर्ट गैलरी की बुकिंग के लिये संपर्क करें- ईमेलः 2010gsds@gmail.com, 011-23392796

gsdsnewdelhi www.gandhismriti.gov.in

RNI NO. DELHIN/2018/76242

''आप मुझे जो सजा देना चाहते हैं, उसे
कम कराने की भावना से मैं यह बयान नहीं
दे रहा हूँ। मुझे तो यही जता देना है कि
आज्ञा का अनादर करने में मेरा उद्देश्य कानून
द्वारा स्थापित सरकार का अपमान करना
नहीं है, बल्कि मेरा हृदय जिस अधिक बड़े
कानून से-अर्थात अन्तरात्मा की आवाज को
स्वीकार करता है, उसका अनुसरण करना ही
मेरा उद्देश्य है।''

(मोहनदास करमचंद गांधी)

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली
(एक स्वायत्त निकाय, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार)

प्रकाशक - मुद्रक : स्वामी गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के लिए पोहोजा प्रिंट सोल्यूशंस प्रा. लि., दिल्ली - 110092 से मुद्रित तथा गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली-110092 से प्रकाशित।